इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ५ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५११४ जनवरी, २०१३

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

भारत का इतिहास एवं संस्कृति	स्वामी विवेकानन्द	३
स्वामी विवेकानन्द	बाबा साहब आपटे	१४
स्वामी विवेकानन्द और कार्ल मार्क्स	डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल	१९
स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	२३
राष्ट्र प्रणेता युग-द्रष्टा	चेत राम गर्ग	२९
हिमाचल में स्वामी विवेकानन्द	एम.एस.मुखर्जी	३७
शताब्दी समारोह समिति में अध्यक्षयीय उद्‌बोधन	भूपेन्द्र सिंह ठाकुर	४२
स्वामी जी का शिकागो व्याख्यान	स्वामी विवेकानन्द	४६

सम्पादकीय

पवित्र अभिव्यक्ति में चमत्कारी शक्ति

भारतवर्ष के ज्ञान से परिपूर्ण तथा आध्यात्मिक शक्ति से परिपुष्ट स्वामी विवेकानन्द ने 11 सितम्बर, 1893 को विश्व धर्म महासभा, शिकागो में पहले दिन के अपने व्याख्यान में अमेरिका निवासी बहनों और भाइयों शब्दों के साथ सम्बोधन किया तो महासभा में विद्युत वेग सदृश एकाएक अभूतपूर्व वातावरण व्याप्त हो गया। ये शब्द कानों में पड़ते ही श्रोतागण हर्षोल्लास से उछल पड़े और कुछ समय तक सभा सदन हजारों करतल ध्वनियों से गुंजायमान रहा। यह प्रभाव सम्बोधन के शब्दों का तो था ही, लेकिन इससे कहीं अधिक प्रभाव स्वामी जी की वेदान्त सिद्ध वेद वाणी के अन्तर्मन की पवित्र अभिव्यक्ति का था। इसी पवित्र अभिव्यक्ति में चमत्कारी शक्ति की प्रचण्ड ज्वाला का अलौकिक आलोक विश्व धर्म महासभा में साक्षात् प्रकट हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द भारतीय इतिहास की गौरवशाली परम्परा के एक युगान्तरकारी महान् विभूति हैं। इन्होंने भारत के अध्यात्म ज्ञान, इतिहास एवं परम्परा का दिव्य प्रकाश सारे संसार में फैलाया और मानवीय गुणों से समवेष्टित विश्व बन्धुत्व की भावना को सशक्त आधार प्रदान किया। भारत भूमि पर स्वामी जी का जन्म 150 वर्ष पूर्व माघ कृष्ण पक्ष सप्तमी के दिन कलियुगाब्द 4964, विक्रमी संवत् 1919 शक सम्वत् 1784, तदनुसार 12 जनवरी, 1863 को हुआ है। अतः इस वर्ष 12 जनवरी, 2013 से 12 जनवरी, 2014 तक स्वामी जी का सार्ध शताब्दी जयन्ती वर्ष व्यापक स्तर पर मनाने का निश्चय हुआ है। इसी उपलक्ष्य में इतिहास दिवाकर का प्रस्तुत ***स्वामी विवेकानन्द सार्धशताब्दी जयन्ती विशेषांक*** *स्वामी जी के श्रीचरणों में समर्पित करते हुए, हम यथाशक्य अपने दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं। राष्ट्रमानस स्वामी जी के आदर्शों का अनुगामी बने, यही हमारी विनम्र आकांक्षा है।*

स्वामी जी का वेदान्त वाणी में अभिव्यक्त यह आह्वान कर्मपथ पर लक्ष्य प्राप्ति का प्रशस्त मार्ग है – ***उतिष्ठत! जाग्रत!! प्राप्यवरान्निबोधत!!!*** *उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।*

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

भारत का इतिहास एवं संस्कृति

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द सार्ध शती समारोह

भारत का प्राचीन इतिहास एक देवतुल्य जाति के अलौकिक उद्यम, अद्‌भुत चेष्टा, असीम उत्साह, अप्रतिहत शक्तिसमूह और सर्वोपरि अत्यन्त गम्भीर विचारों से परिपूर्ण है। 'इतिहास' शब्द का अर्थ यदि केवल राजे-रजवाड़ों की कथाएं, उनके काम-क्रोध-व्यसनादि के द्वारा समय-समय पर डाँवाडोल और उनकी सुचेष्टा या कुचेष्टा से रंग बदलते हुए समाज का चित्र माना जाए, तो कहना होगा कि इस प्रकार का इतिहास भारत का है ही नहीं। किन्तु भारत के समस्त धर्मग्रन्थ, काव्य-सिन्धु दर्शन शास्त्र और विविध वैज्ञानिक पुस्तकें अपने प्रत्येक पद और पंक्ति से, राजादि पुरुषविशेषों का वर्णन करने वाली पुस्तकों की अपेक्षा सहस्रों गुना अधिक स्पष्ट रूप से, भूख-प्यास-काम-क्रोधादि से परिचालित, सौन्दर्य-तृष्णा से आकृष्ट, महान अप्रतिहत बुद्धिसम्पन्न उस बृहत् जन-समाज के अभ्युदय के क्रमविकास का गुणगान कर रही हैं, जिस जन-समाज ने सभ्यता के प्रत्यूष के पहले ही नाना प्रकार के भावों का आश्रय ले, नानाविध पथों का अवलम्बन कर इस गौरव की अवस्था को प्राप्त किया था। प्राचीन भारतवासियों ने प्रकृति के साथ युग-युगान्तरव्यापी संग्राम में जो असंख्य जय-पताकाएँ संग्रह की थीं, वे झंझावत के झकोरे में पड़कर यद्यपि आज जीर्ण हो गयी हैं, किन्तु फिर भी वे भारत के अतीत के गौरव की जय-घोषणा कर रही है।[1]

हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्य-भूमि है। यहीं बड़े-बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ है, यहीं संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं, केवल यहीं, आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श का द्वार खुला हुआ है।

मैंने पाश्चात्य देश में भ्रमण किया है और मैं भिन्न-भिन्न देशों में बहुत सी जातियों से मिला-जुला हूँ और मुझे यह लगा है कि प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति का एक न एक विशिष्ट आदर्श अवश्य होता है — राष्ट्र के समस्त जीवन में संचार करने वाला एक महत्त्वपूर्ण आदर्श; कह सकते हैं कि वह आदर्श राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ होती है। परन्तु भारत का मेरुदण्ड राजनीति नहीं है, सैन्य शक्ति भी नहीं है, व्यावसायिक आधिपत्य भी नहीं है और न यांत्रिक शक्ति ही है वरन् है धर्म — केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है और उसी को हमें रखना भी है। आध्यात्मिकता ही सदैव से भारत की निधि रही है। इसमें कोई शक नहीं कि शारीरिक शक्ति द्वारा अनेक महान् कार्य सम्पन्न होते हैं और इसी प्रकार मस्तिष्क की अभिव्यक्ति भी अद्‌भुत है, जिससे विज्ञान के सहारे तरह-तरह के यंत्रों तथा मशीनों का निर्माण होता है, फिर भी जितना ज़बरदस्त प्रभाव आत्मा का विश्व पर पड़ता

है, उतना किसी का नहीं।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतवर्ष सदैव से अत्यधिक क्रियाशील रहा है। आज हमें बहुत से लोग जिन्हें और अधिक जानकारी होनी चाहिए, यह सिखा रहे हैं कि हिन्दू जाति सदैव से भीरु तथा निष्क्रिय रही है और यह बात विदेशियों में एक प्रकार से कहावत के रूप में प्रचलित हो गई है। मैं इस विचार को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष कभी निष्क्रिय रहा है। सत्य तो यह है कि जितनी कर्मण्यता हमारे इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में रही है उतनी शायद ही कहीं रही हो और इस कर्मण्यता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हमारी यह चिर प्राचीन एवं महान् हिन्दू जाति आज भी ज्यों की त्यों जीवित है — और इतना ही नहीं बल्कि अपने उज्ज्वलतम जीवन के प्रत्येक युग में मानो अविनाशी और अक्षय नवयौवन प्राप्त करती है। यह कर्मण्यता हमारे यहाँ धर्म में प्रकट होती है।[२]

आज तो समस्त संसार आध्यात्मिक खाद्य के लिए भारत भूमि की ओर ताक रहा है और भारत को ही यह प्रत्येक राष्ट्र को देना होगा। केवल भारत में ही मनुष्य जाति का सर्वोच्च आदर्श प्राप्य है और आज कितने ही पाश्चात्य पंडित हमारे इस आदर्श को, जो हमारे संस्कृत साहित्य तथा दर्शन शास्त्रों में निहित हैं, समझने की चेष्टा कर रहे हैं। सदियों से यहीं आदर्श भारत की एक विशेषता रही है।

जब से इतिहास का आरम्भ हुआ है, कोई भी प्रचारक भारत के बाहर हिन्दू सिद्धान्तों और मतों का प्रचार करने के लिए नहीं गया, परन्तु अब हममें एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। गीता ।।४।७।।

"जब जब धर्म की हानि होती है तथा अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब साधुओं के परित्राण, दुष्कर्मों के नाश तथा धर्म-संस्थापन के लिए मैं जन्म लेता हूँ।" धार्मिक अन्वेषणों द्वारा हमें इस सत्य का पता चलता है कि उत्तम आचरण शास्त्र से युक्त कोई भी ऐसा देश नहीं है जिसने उसका कुछ न कुछ अंश हमसे न लिया हो, तथा कोई भी ऐसा धर्म नहीं है जिसमें आत्मा के अमरत्व का ज्ञान विद्यमान है, और उसने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वह हमसे ही ग्रहण नहीं किया है।[३]

हिन्दू जाति ने अपना धर्म श्रुति-वेदों से प्राप्त किया है। उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त हैं। श्रोताओं को, सम्भव है, यह बात हास्यास्पद लगे कि कोई पुस्तक अनादि और अनन्त कैसे हो सकती है। किन्तु वेदों का अर्थ कोई पुस्तक है ही नहीं। वेदों का अर्थ है, भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक सत्यों का संचित कोष। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मनुष्यों को पता लगने से पूर्व से ही अपना काम करता चला आ रहा था

और आज यदि मनुष्य जाति उसे भूल भी जाये, तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा, ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत का शासन करने वाले नियमों के सम्बन्ध में भी है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ और जीवात्मा का आत्माओं के परम पिता के साथ जो नैतिक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध हैं, वे उनके आविष्कार के पूर्व भी थे और हम यदि उन्हें भूल भी जायें, तो भी बने रहेंगे। इन नियमों या सत्यों का अविष्कार करने वाले ऋषि कहलाते हैं और हम उनको पूर्णत्व तक पहुंची हुई आत्मा मानकर सम्मान देते हैं। श्रोताओं को यह बतलाते हुए हर्ष होता है कि इन महानतम ऋषियों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं।[४]

वेद नामक ग्रन्थराशि प्रधानत: दो भागों में विभक्त है — कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड, संस्कार पक्ष और अध्यात्म पक्ष। कर्मकाण्ड में नाना प्रकार के योग-यज्ञों की बातें हैं; उनमें अधिकांश वर्तमान युग के अनुपयोगी होने के कारण परित्यक्त हुए हैं और कुछ अभी तक किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। कर्मकाण्ड के मुख्य भाव, जैसे साधारण व्यक्ति के कर्तव्य, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी तथा संन्यासी, इन विभिन्न आश्रमियों के भिन्न-भिन्न कर्तव्य अब भी थोड़ा बहुत माने जा रहे हैं। दूसरा भाग ज्ञानकाण्ड हमारे धर्म का आध्यात्मिक अंश है। उसका नाम वेदान्त है, अर्थात् वेदों का अन्तिम भाग, वेदों का चरम लक्ष्य। वेद ज्ञान के इस सार अंश का नाम है वेदान्त अथवा उपनिषद् और भारत के सभी सम्प्रदायों को — द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, अद्वैतवादी अथवा सौर, शाक्त गाणपत्य, शैव, वैष्णव— जो कोई हिन्दू धर्म के भीतर रहना चाहे उसी को वेदों के इस उपनिषद् अंश को मानना पड़ेगा। उनकी अपनी व्याख्याएँ हो सकती हैं वे उपनिषदों की अपनी-अपनी रुचि के अनुसार व्याख्या कर सकते हैं, पर उनको इनका प्रामाण्य अवश्य मानना पड़ेगा। इसीलिए हम हिन्दू शब्द के बदले वेदान्ती शब्द का प्रयोग करना चाहते हैं। भारतवर्ष के सभी दार्शनिकों को, जो सनातनी हैं, वेदान्त का प्रामाण्य स्वीकार करना पड़ा और आजकल भारत में हिन्दू धर्म की चाहे जितनी शाखा-प्रशाखाएँ हों, उनमें से कुछ चाहे कितने अपरिपक्व क्यों न मालूम हों, उनके उद्देश्य चाहे जितने जटिल क्यों न प्रतीत हों, जो उनको समझता और उनका अच्छी तरह अध्ययन करता है, वह समझेगा कि उन्हें उपनिषदों के भावों से मूलरूप से सम्बद्ध करके देखा जा सकता है। उन उपनिषदों के भाव हमारी जाति की अस्थि-मज्जा में ऐसे घुस गये हैं कि यदि कोई हिन्दू धर्म की बहुत ही अपरिपक्व शाखाओं के रूपक-तत्त्व का अध्ययन करेगा, तो वह भी उपनिषद् की रूपकमय अभिव्यक्ति को देखकर चकित रह जायेगा। उपनिषदों के ही तत्त्व कुछ समय बाद इन धर्मों में रूपक की भाँति मूर्तिमान हुए हैं। उपनिषदों के बड़े-बड़े आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्त्व आज हमारे घरों में पूजा के प्रतीक-रूप में परिवर्तित होकर विराजमान हैं। इस प्रकार हम आज जितने पूजा के प्रतीकों का व्यवहार करते हैं, वे सबके सब वेदान्त से आये हैं, क्योंकि वेदान्त में उनका रूपक भाव से प्रयोग किया गया है, फिर क्रमश: वे भाव जाति के मर्मस्थान में प्रवेश कर अन्त में पूजा के प्रतीकों के रूप में उसके दैनिक जीवन का अंग बन गये हैं।

वेदान्त के बाद ही स्मृतियों का प्रमाण है। ये भी ऋषिलिखित ग्रन्थ हैं, पर इनका प्रमाण

वेदान्त के अधीन है, क्योंकि वे हमारे लिए वैसे ही हैं, जैसे दूसरे धर्म-वालों के लिए उनके शास्त्र। हम यह मानते हैं कि विशेष ऋषियों ने ये स्मृतियाँ रची हैं; इस दृष्टि से अन्यान्य धर्मों के शास्त्रों का जैसा प्रमाण है, स्मृतियों का भी वैसा ही है, पर स्मृतियाँ हमारे लिए अन्तिम प्रमाण नहीं है। यदि स्मृतियों का कोई अंश वेदान्त विरोधी हो, तो उसे त्यागना पड़ेगा, उसका कोई प्रमाण न रहेगा। फिर स्मृतियाँ हर युग में बदलती भी गई हैं। हम शास्त्रों में पढ़ते हैं - सत्ययुग में अमुक स्मृतियों का प्रमाण है, फिर त्रेता, द्वापर और कलियुग में से प्रत्येक युग में अन्यान्य स्मृतियों का। जाति पर पड़ने वाले देश-काल-पात्र के परिवर्तन के प्रभाव के अनुसार आचारों और रीतियों का परिवर्तन होना अनिवार्य है; और स्मृतियों को ही प्रधानत: इन आचारों और रीतियों का नियामक होने के कारण, समय-समय पर बदलना पड़ा है। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग इस बात को अच्छी तरह याद रखो। वेदान्त में धर्म के जिन मूल तत्त्वों की व्याख्या हुई है, वे अपरिवर्तनीय हैं। क्यों ? इसलिए कि वे मनुष्य तथा प्रकृति सम्बन्धी अपरिवर्तनीय तत्त्वों पर प्रतिष्ठित हैं, वे कभी बदल नहीं सकते। आत्मा, स्वर्ग प्राप्ति आदि की भावना कभी बदलने की नहीं। हजारों वर्ष पहले वे जैसी थीं, अब भी वैसी हैं और लाखों वर्ष बाद भी वैसी ही रहेंगी। परन्तु जो धर्मानुष्ठान हमारी सामजिक अवस्था और पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर रहते हैं, समाज के परिवर्तन के साथ वे भी बदल जायेंगे। इसलिए विशिष्ट विधि केवल समय विशेष के लिए हितकर और उचित होगी, न कि दूसरे समय के लिए। इसीलिए हम देखते हैं कि किसी समय किसी खाद्यविशेष का विधान रहा है और दूसरे समय नहीं है। वह खाद्य उस विशेष समय के लिए उपयोगी था; पर जलवायु आदि के परिवर्तन तथा अन्यान्य परिस्थितियों की मांग को पूरी करने की दृष्टि से स्मृति ने खाद्य आदि के विषय में विधान बदल दिया है। इसलिए यह स्वत: प्रतीत होता है कि यदि वर्तमान समय में हमारे समाज में किसी परिवर्तन की ज़रूरत हो तो वह अवश्य ही करना पड़ेगा। ऋषि लोग आकर दिखा देंगे कि किस तरह वह परिवर्तन सम्पन्न करना होगा, परन्तु हमारे धर्म के मूल तत्त्वों का एक कण भी परिवर्तित न होगा; वे ज्यों के त्यों रहेंगे।

इसके बाद पुराण आते हैं। उनमें इतिहास, ब्रह्माण्ड-विज्ञान, विविध रूपकों के द्वारा दार्शनिक तत्त्वों के व्याख्यान इत्यादि नाना विषय हैं। वैदिक धर्म को सर्वसाधारण जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए पुराणों की रचना हुई। जिस भाषा में वेद लिखे हुए हैं, वह अत्यन्त प्राचीन है; पण्डितों में से भी बहुत कम लोग उन ग्रन्थों का समय-निर्णय कर सकते हैं। पुराण उस समय के लोगों की भाषा में लिखे गये हैं जिसे हम आधुनिक संस्कृत कह सकते हैं। वे पंडितों के लिए नहीं, किन्तु साधारण लोगों के लिए हैं, क्योंकि साधारण लोग दार्शनिक तत्त्व नहीं समझ सकते हैं। उन्हें वे तत्त्व समझाने के लिए स्थूल रूप से साधुओं, राजाओं और महापुरुषों के जीवनचरित तथा उस जाति की ऐतिहासिक घटनाओं के सहारे शिक्षा दी जाती थी। धर्म के सनातन तत्त्वों को दृष्टान्त द्वारा समझाने के लिए ही ऋषियों ने इनका उपयोग किया था।[५]

उत्तर भारतवासी दाक्षिणात्यों के विशेष कृतज्ञ हैं, क्योंकि आज भारत में जो प्रेरणाएँ काम

कर रही हैं, उनमें से अधिकांश का इसी दक्षिण प्रदेश से उद्गम होना पाया जाता है। श्रेष्ठ भाष्यकार, युगप्रवर्तक आचार्य— शंकर, रामानुज और मध्व ने इसी दक्षिण भारत में जन्म लिया है। उन भगवान् शंकाराचार्य के सामने संसार का प्रत्येक अद्वैतवादी ऋणी हो मस्तक झुकाता है; उन महात्मा रामानुजाचार्य के स्वर्गीय स्पर्श ने पददलित पैरिया लोगों को अलवार बना दिया; तथा उत्तर भारत के एकमात्र महापुरुष श्री कृष्ण चैतन्य, जिनका प्रभाव सारे भारत में है, उनके अनुयायियों ने भी उन महाविभूति मध्वाचार्य का नेतृत्व स्वीकार किया। ये सभी दक्षिण में ही उत्पन्न हुए। इस वर्तमान युग में भी काशीपुरी के वैभव में अग्रस्थान दाक्षिणात्यों का ही है।[६]

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे बल, यही नहीं, हमारे जातीय जीवन की भी मूल भित्ति है। इस समय मैं यह तर्क वितर्क करने नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं, सही है या नहीं, और अन्त तक यह लाभदायक है या नहीं। किन्तु अच्छा हो या बुरा, धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है; तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और चिरकाल के लिए भी तुम्हें उसी का अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसी के आधार पर खड़ा होना होगा, चाहे तुम्हें इस पर उतना विश्वास हो या न हो, जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बंधे हुए हो, और अगर तुम इसे छोड़ दो तो चूर-चूर हो जाओगे। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे अवश्य ही सशक्त बनाना होगा। तुम जो युगों के धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था, उस पर सब कुछ निछावर किया था। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्म-रक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था, मृत्यु को भी उन्होंने हृदय से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गए, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें, राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तदृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती। देखा कि किस तरह ये मन्दिर सैंकड़ों आक्रमणों और सैंकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किए हुए हैं, ये बार-बार नष्ट हुए और बार-बार ध्वंसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए, अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायेगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि दूसरी चीज़ की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहां गौण विषय हैं, मुख्य विषय है धर्म। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अत: धर्म को ही सशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाये? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हीं को प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था।

धर्म–महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुत: मेरे ये संकल्प ही थे जो सारे संसार में मुझे लिए फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मुनष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हीं से इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पर्त खाये हुए संस्कृत शब्दों से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर सबकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत सी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा संस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य संस्कृत के अच्छे विद्वान न हो जायें। यह कठिनाई तुम्हारी समझ में आ जायेगी, जब मैं कहूँगा कि आजीवन इस संस्कृत भाषा का अध्ययन करने पर भी जब मैं इसकी कोई नयी पुस्तक उठाता हूँ, तब वह मुझे बिल्कुल नयी जान पड़ती है। अब सोचो कि जिन लोगों ने कभी विशेष रूप से इस भाषा का अध्ययन करने का समय नहीं पाया, उनके लिए यह भाषा कितनी अधिक क्लिष्ट होगी। अत: मनुष्यों की बोलचाल की भाषा में उन विचारों की शिक्षा देनी होगी। साथ ही संस्कृत की भी शिक्षा अवश्य होती रहनी चाहिए, क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से ही जाति को एक प्रकार का गौरव, शक्ति और बल प्राप्त हो जाता है। महान् रामानुज, चैतन्य और कबीर ने भारत की अपेक्षित जातियों को उठाने का जो प्रयत्न किया था, उसमें उन महान् धर्माचार्यों को अपने जी जीवन काल में अद्‌भुत सफलता मिली थी। किन्तु फिर उनके बाद उस कार्य का जो शोचनीय परिणाम हुआ, उसकी व्याख्या होनी चाहिए और जिस कारण उन बड़े बड़े धर्माचार्यों के तिरोभाव के प्राय: एक ही शताब्दी के भीतर वह उन्नति रुक गयी, उसकी भी व्याख्या करनी होगी। इसका रहस्य यह है — उन्होंने जातियों को उठाया था। वे सब चाहते थे कि ये उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो जाएं, परन्तु उन्होंने जनता में संस्कृत का प्रचार करने में अपनी शक्ति नहीं लगायी। यहाँ तक कि भगवान बुद्ध ने भी यह भूल की कि उन्होंने जनता में संस्कृत शिक्षा का अध्ययन बंद कर दिया। वे तुरन्त फल पाने के इच्छुक थे, इसीलिए उस समय की भाषा पाली में संस्कृत से अनुवाद कर उन्होंने उन विचारों का प्रचार किया। यह बहुत ही सुन्दर हुआ था, जनता ने उनका अभिप्राय समझा, क्योंकि वे जनता की बोलचाल की भाषा में उपदेश देते थे। यह बहुत ही अच्छा हुआ था, इससे उनके भाव बहुत शीघ्र फैले और दूर–दूर तक पहुंचे। किन्तु इसके साथ साथ संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान का विस्तार हुआ सही, पर उसके साथ–साथ प्रतिष्ठा नहीं बनी, संस्कार नहीं बना। संस्कृति ही युग के आघातों को सहन कर सकती है, मात्र ज्ञान–राशि नहीं। तुम संसार के सामने प्रभूत ज्ञान रख सकते हो, परन्तु इससे उसका विशेष उपकार न होगा। संस्कार को रक्त में व्याप्त हो जाना चाहिए। वर्तमान समय में हम कितने राष्ट्रों के सम्बन्ध में जानते हैं, जिनके पास विशाल ज्ञान का सागर है, परन्तु इससे क्या ?

वे बाघ की तरह नृशंस हैं, वे बर्बरों के सदृश हैं, क्योंकि उनका ज्ञान संस्कार में परिणत नहीं हुआ है। सभ्यता की तरह ज्ञान भी चमड़े की ऊपरी सतह तक ही सीमित है, छिछला है और एक खरोंच लगते ही वह पुरानी नृशंसता जाग उठती है। ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। यही भय है। जनता को उसकी बोलचाल की भाषा में शिक्षा दो, उसको भाव दो, वह बहुत कुछ जान जायेगी, परन्तु साथ ही कुछ और भी जरूरी है : उसको संस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नहीं कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नहीं हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो संस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णों के ऊपर उठेगी और पहले की तरह उन पर अपना प्रभुत्व फैलायेगी। ऐ पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे बचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय संस्कृत पढ़ना है, और यह लड़ना-झगड़ना और उच्च वर्णों के विरोध में लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार नहीं होगा, इससे लड़ाई-झगड़े और बढ़ेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकड़े टुकड़े हो चुके हैं, और भी टुकड़ों में बंटती रहेगी। जातियों में समता लाने के लिए एकमात्र उपय उस संस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सकते हो तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायेगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत में द्रविड़ नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से बिल्कुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य हैं, अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणों से बिल्कुल पृथक् जाति की हैं। भाषा वैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिल्कुल निराधार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा में भेद है। दूसरा भेद मेरी नज़र में नहीं आता। हम यहाँ उत्तरी भारत के इतने लोग हैं, मैं अपने यूरोपीय मित्रों से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगों को चुनकर अलग कर दें। भेद कहाँ है ? ज़रा से भेद भाषा में है। पूर्वोक्त मतवादी कहते हैं कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे संस्कृत बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्रविड़ भाषा बोलते बोलते संस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियों के सम्बन्ध में भी यही बात क्यों न होगी ? क्यों न कहा जाए कि दूसरी जातियां भी एक-एक करके उत्तर भारत से आयी हैं, उन्होंने द्रविड़ भाषा को अपनाया और संस्कृत भूल गयीं ? यह युक्ति तो दोनों ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात बातों पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्राविड़ जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है और उनमें से जो कुछ थोड़े से रह गये थे, वे जंगलों और दूसरे-दूसरे स्थानों में बस गये। यह बिल्कुल सम्भव है कि संस्कृत के बदले वह द्राविड़ भाषा ले ली गयी हो, परन्तु ये सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नहीं।

इसके बाद एक दूसरा विचार है कि शूद्र लोग निश्चय ही आदिम जाति के या अनार्य हैं।

तब वे क्या हैं ? वे गुलाम हैं। विद्वान कहते हैं कि इतिहास अपने को दुहराता है। अमरीकी, अंग्रेज़, डच और पुर्तगाली बेचारे अफ्रीकियों को पकड़ लेते थे, जब तक वे जीवित रहते, उनसे घोर परिश्रम कराते थे और इनकी मिश्रित संतानें भी दासता से उत्पन्न होकर चिरकाल तक दासता में ही पड़ी रहती थीं। इस अद्‌भुत उदाहरण से मन हज़ारों वर्ष पीछे जाकर यहाँ भी उसी तरह की घटनाओं की कल्पना करता है और हमारे पुरातत्त्ववेत्ता भारत के सम्बन्ध में स्वप्न देखते हैं कि भारत काली आँखोंवाले आदिवासियों से भरा हुआ था, और उज्ज्वल आर्य बाहर से आये — परमात्मा जाने कहाँ से आये। कुछ लोगों के मत से वे मध्य तिब्बत से आये, दूसरे कहते हैं वे मध्य एशिया से आये। कुछ स्वदेश प्रेमी अंग्रेज़ जो सोचते हैं कि आर्य लाल बाल वाले थे। अपनी रुचि के अनुसार दूसरे सोचते हैं कि वे सब काले बाल वाले थे। अगर लेखक खुद काले बाल वाला मनुष्य हुआ तो सभी आर्य काले बाल वाले थे। कुछ दिन हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि आर्य स्विट्ज़रलैण्ड की झीलों के किनारे बसते थे। मुझे ज़रा भी दु:ख न होता, अगर वे सबके सब, इन सब सिद्धान्तों के साथ, वहीं डूब मरते। आजकल कोई कोई कहते हैं कि वे उत्तरी ध्रुव में रहते थे। ईश्वर आर्यों और उनके निवास स्थलों पर कृपा दृष्टि रखे। इन सिद्धान्तों की सत्यता के बारे में यही कहना है कि हमारे शास्त्रों में एक भी शब्द नहीं है, जो प्रमाण दे सके कि आर्य भारत के बाहर किसी देश से आये। हाँ, प्राचीन भारत में अफ़गानिस्तान भी शामिल था, बस इतना ही। और यह सिद्धान्त भी कि शूद्र अनार्य और असंख्य थे, बिल्कुल अतार्किक और अयौक्तिक है। उन दिनों यह सम्भव ही नहीं था कि मुट्ठी भर आर्य यहाँ आकर लाखों अनार्यों पर अधिकार जमाकर बस गये हों। अजी, वे अनार्य उन्हें खा जाते, पांच ही मिनट में उनकी चटनी बना डालते।[७]

हमें अपने धर्मरूपी मेरुदण्ड की बात को सर्वदा स्मरण रखना होगा, और ऐसा करने के लिए, हमें रास्ता बताने के लिए एक पथप्रदर्शक की आवश्यकता है। यदि हमारे यहाँ कोई ऐसा हिन्दू हो जो यह विश्वास करने के लिए उद्यत न हो कि हमारा धर्म पूर्णत: आध्यात्मिक है तो मैं उसे हिन्दू मानने को तैयार नहीं हूँ। मुझे याद है, एक बार कश्मीर राज्य के किसी गाँव में मैंने एक बूढ़ी औरत से बातचीत करते समय पूछा था, “तुम किस धर्म को मानती हो?” इस पर वृद्धा ने तपाक से उत्तर दिया था, “ईश्वर को धन्यवाद; उसकी कृपा से मैं मुसलमान हूँ।” इसके बाद किसी हिन्दू से भी यही प्रश्न पूछा तो उसने साधारण ढंग से कह दिया, “मैं हिन्दू हूँ।”[८]

हिन्दू लोग अतीत का जितना अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा; और जो कोई इस अतीत के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को विज्ञ करने की चेष्टा कर रहा है, वह स्वजाति का परम हितकारी है। भारत की अवनति इसलिए नहीं हुई कि हमारे पूर्व पुरुषों के नियम एवं आचार-व्यवहार खराब थे, वरन् उसकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों को उनकी न्यायसंगत परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया।

भारत का इतिहास पढ़नेवाला प्रत्येक विचारशील पाठक यह जानता है कि भारत के सामाजिक विधान प्रत्येक युग के साथ परिवर्तित हुए हैं। आरम्भ में ये नियम एक ऐसी विराट

योजना के पूंजीभूत रूप थे, जिसे क्रमश: भविष्य में फलीभूत होना था। प्राचीन भारत के ऋषिगण इतने दूरदर्शी थे कि उनकी ज्ञानराशि के महत्त्व को समझने में विश्व को अब भी सदियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; और उनके वंशधरों द्वारा इस महान् उद्देश्य को पूर्ण रूप से ग्रहण करने की अक्षमता ही भारत की अवनति का एकमात्र कारण है।[९]

यथार्थ में तो अन्य देशों के अनेक भद्र लोगों की अपेक्षा किसी भी हिन्दू किसान को धार्मिक शिक्षा अधिक प्राप्त है। अपने भाषणों में दर्शन और धर्मशास्त्र के यूरोपीय शब्दों के उपयोग करने के विषय में मुझे एक मित्र ने दोषी ठहराया। मैं संस्कृत शब्दों का सहर्ष उपयोग करता, मेरे लिए वैसा करना बहुत आसान होता, क्योंकि धर्म-भाव को प्रकट करने के लिए एकमात्र पूर्ण साधन संस्कृत भाषा ही है; पर वह मित्र यह भूल गया था कि मैं पाश्चात्य श्रोताओं के सामने भाषण दे रहा था। और यद्यपि एक भारतीय ईसाई पादरी ने यह कहा था कि हिन्दू लोग अपने धर्मग्रन्थों का अर्थ भूल गये हैं और पादरी लोगों ने ही उसका अर्थ खोज निकाला, पादरियों के उस बृहत् समुदाय में मुझे एक भी ऐसा नहीं मिला, जो संस्कृत का एक वाक्य भी समझ सकता — पर फिर भी उनमें कई ऐसे थे, जिन्होंने वेदों तथा हिन्दू धर्म के अन्य पवित्र ग्रन्थों की निन्दात्मक समालोचना के विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़ कर सुनाये।[१०]

संसार का इतिहास इसका साक्षी है कि उचित शोध करने पर यही पाया जाता है कि विश्व में ज्ञान की जो विविध शाखाएँ हैं, जो शास्त्र और उदात्त आत्मोन्नतिमूलक विचार हैं — उनका उद्‌गम भारत से ही हुआ।[११] यही बातें विज्ञान के सम्बन्ध में भी सत्य हैं। भारत ने पुरातन काल में सब से पहले वैज्ञानिक चिकित्सक उत्पन्न किए थे और सर विलियम हंटर के मतानुसार उसने विभिन्न रासायनिकों का पता लगाकर और विरूप कानों और नाकों को सुडौल बनाने की विधि सिखाकर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी योग दिया है। गणित में तो उसने और भी अधिक किया है, क्योंकि बीजगणित, ज्यामिति, ज्योतिष और आधुनिक विज्ञान की विजय — मिश्र गणित — सबका आविष्कार भारत में हुआ था, यहाँ तक कि वे दस अंक, जो सम्पूर्ण वर्तमान सभ्यता की मूल आधारशिला हैं, भारत में आविष्कृत हुए हैं।[१२] भारत में विश्वास करो और हमारे भारतीय धर्म में विश्वास करो। शक्तिशाली बनो, आशावान बनो और संकोच छोड़ो; और याद रखो कि यदि बाहर से कोई वस्तु लेते हैं, तो संसार की किसी अन्य जाति की तुलना में हिन्दू के पास उसके बदले में देने को अनन्त गुणा अधिक है।[१३]

यदि हम इतिहास को देखें, तो विदित होगा कि जो विचारधारा सर्वश्रेष्ठ होगी, वही जीवित रहेगी; और चरित्र की अपेक्षा अन्य ऐसी कौन सी शक्ति है, जो जीने की योग्यता प्रदान कर सकती है ? विचारशील मनुष्य जाति का भावी धर्म अद्वैत ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। और सब सम्प्रदायों में उन्हीं की विजय होगी, जो अपने जीवन में सबसे अधिक चरित्र का उत्कर्ष दिखा सकेंगे।[१४]

हे भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री दमयन्ती है; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य उमानाथ शंकर हैं। हे वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं

भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं; तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकारकर कहो कि भारतवासी, सब मेरे भाई हैं, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशु सज्जा, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्द्धक्य की वाराणसी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो कि – 'हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो; माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ।'[१५]

भारत का पुनरुत्थान होगा, पर वह जड़ की शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शान्ति और प्रेम की ध्वजा की शक्ति से सम्पादित होगा।[१६]

अपने पुरखों से उत्तराधिकार स्वरूप जो अमूल्य सम्पत्ति पायी है, उसे प्राणपण से सुरक्षित रखना ही अपना प्रथम और प्रधान कर्तव्य समझें। आपने क्या ऐसे देश का नाम सुना है, जिसके बड़े-बड़े राजा अपने को प्राचीन राजाओं अथवा पुरातन दुर्गनिवासी, पथिकों का सर्वस्व लूट लेने वाले डाकू बैरनों (Barons) के वंशधर न बताकर अरण्यवासी अर्धनग्न तपस्वियों की सन्तान कहने में ही अधिक गौरव समझते हैं? यदि आपने न सुना हो तो सुनिए – हमारी मातृभूमि ही वह देश है। दूसरे देशों में बड़े-बड़े धर्माचार्य अपने को किसी राजा का वंशधर कहने की बड़ी चेष्टा करते हैं, और भारतवर्ष में बड़े-बड़े राजा अपने को किसी ऋषि की सन्तान प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। इसी से मैं कहता हूँ कि आप लोग अध्यात्म में विश्वास कीजिए या न कीजिए, यदि आप राष्ट्रीय जीवन को दुरुस्त रखना चाहते हैं तो आपको आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए सचेष्ट होना होगा। एक हाथ से धर्म को मज़बूती से पकड़कर दूसरे हाथ को बढ़ा, अन्य जातियों से जो कुछ सीखना हो, सीख लीजिए; किन्तु स्मरण रखिएगा जो कुछ आप सीखें उसको मूल आदर्श का अनुगामी ही रखना होगा। तभी अपूर्व महिमा से मंडित भावी भारत का निर्माण होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारतवर्ष, किसी काल में भी जिस श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं था, शीघ्र ही उस श्रेष्ठता का अधिकारी होगा। प्राचीन ऋषियों की अपेक्षा श्रेष्ठतर ऋषियों का आविर्भाव होगा और आपके पूर्वज अपने वंशधरों की इस अभूतपूर्व उन्नति से बड़े सन्तुष्ट होंगे। इतना ही नहीं, मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, वे परलोक में अपने-अपने स्थानों से अपने वंशजों को इस प्रकार महिमान्वित और महत्त्वशाली देखकर, अपने को महान् गौरवान्वित समझेंगे।

हे भाइयो, हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। हमारे कार्यों पर भारत का भविष्य निर्भर है। पहले की अपेक्षा और भी गौरवमंडित और अभिनव शक्तिशाली बनाकर भक्तिभाव से उसे उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दीजिए। ईश्वरीय तत्त्व का ऐसा पूर्ण विकास हमारी मातृभूमि के अतिरिक्त किसी अन्य देश में नहीं हुआ था, क्योंकि ईश्वर-विषयक इस भाव का अन्यत्र कभी अस्तित्व नहीं था। शायद आप लोगों को मेरी

बात पर आश्चर्य होता हो; किन्तु किसी दूसरे शास्त्र से हमारे ईश्वर तत्त्व के समान भाव ज़रा दिखाओ तो सही! अन्यान्य जातियों के एक-एक जातीय ईश्वर या देवता थे, जैसे यहूदियों के ईश्वर, अरबवालों के ईश्वर इत्यादि; और ये ईश्वर दूसरी जातियों के ईश्वर के साथ लड़ाई-झगड़ा किया करते थे। किन्तु यह तत्त्व कि ईश्वर कल्याणकारी और परम दयालु है, हमारा पिता, माता, मित्र, प्राणों के प्राण और आत्मा की अन्तरात्मा है, केवल भारत ही जानता रहा है। अन्त में जो शैवों के लिए शिव, वैष्णवों के लिए विष्णु, कर्मियों के लिए कर्म, बौद्धों के लिए बुद्ध, जैनों के लिए जिन, ईसाइयों और यहूदियों के लिए जिहोवा, मुसलमानों के लिए अल्ला और वेदान्तियों के लिए ब्रह्म है — जो सब धर्मों, सब सम्प्रदायों के प्रभु हैं — जिनकी सम्पूर्ण महिमा केवल भारत ही जानता था, वे ही सर्वव्यापी, दयामय प्रभु हम लोगों को आशीर्वाद दें, हमारी सहायता करें, हमें शक्ति दें, जिससे हम अपने उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत कर सकें।

हम लोगों ने जिनका श्रवण किया, वह खाये हुए अन्न के समान हमारी पुष्टि करे, उसके द्वारा हम लोगों में इस प्रकार का वीर्य उत्पन्न हो कि हम दूसरों की सहायता कर सकें; हम — आचार्य और शिष्य — कभी भी आपस में विद्वेष न करें।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्वषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति ! हरिः ॐ।।

सन्दर्भ

विवेकानन्द साहित्य जन्मशती संस्करण, १९६३ अद्वैत आश्रम, ५ डिही एण्टाली रोड़, कोलकत्ता—१४

१. खण्ड १०, पृष्ठ १३२
२. खण्ड ५, पृष्ठ ३५
३. खण्ड ५, पृष्ठ ३६
४. खण्ड १, पृष्ठ ७—८
५. खण्ड ५, पृष्ठ २०—२२
६. खण्ड ९, पृष्ठ ३६०
७. खण्ड ५, पृष्ठ १८२—१८६
८. खण्ड ५, पृष्ठ ३३४
९. खण्ड ९, पृष्ठ ३५३
१०. खण्ड ९, पृष्ठ ३७३
११. खण्ड ८, पृष्ठ २३१
१२. खण्ड १०, पृष्ठ २८४
१३. खण्ड ४, पृष्ठ २६९
१४. खण्ड ४, पृष्ठ ३३६
१५. खण्ड ९, पृष्ठ २२८
१६. खण्ड ९, पृष्ठ ३८०
१७. खण्ड ५, पृष्ठ ४९—५१

स्वामी विवेकानन्द

बाबा साहब आपटे

सन् १९६३ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना कौन सी रही? शायद कोई कामराज योजना का विचार करें, पर हमारी दृष्टि इससे भिन्न है। वह राजकीय नहीं राष्ट्रीय है। जिस घटना से प्रचंड कर्तव्य के वृक्ष निर्माण हो सकें, ऐसे बीज अंकुरित हो, वहीं महत्वपूर्ण होगी। उसका प्रचार जोर-शोर से भले ही नहीं हुआ हो, उससे कुछ भी बिगड़ता नहीं। उस घटना में दूरगामी परिणाम करने का कितना सामर्थ्य है, उस घटना से हजारों लाखों व्यक्तियों को उदात्त कर्म-प्रेरणा प्राप्त होती है या नहीं, इसी पर उसका महत्व निर्भर है। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो भावी इतिहासकार को यही लिखना पड़ेगा कि युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द जी जन्मशताब्दी के अवसर पर आज तक केवल अंग्रेजी में ही बंदी रहे स्वामी जी के सारगर्भित विचार भारत की सभी भाषाओं में अनुवाद रूप में प्रकाशित हुए। यही १९६३ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है।

स्वामी जी को महासमाधि लिए ६० वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। अपने देश में आज विभिन्न क्षेत्रों में कम-अधिक कर्तब करने वाले जो पुरुष हैं, वे प्राय: ६० वर्ष से अधिक के ही हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में यानि साधारणत: बीसवीं सदी के प्रथम चरण में उन्होंने स्वामीजी के विचार, जो उस समय सारे वातावरण में छाए थे, अंग्रेजी में पढ़े। इस वर्ष जन्मशताब्दी के अवसर पर बोलते समय कई नेताओं ने कहा है कि उन विचारों को पढ़कर उस समय स्वयं में विद्युत संचार का सा अनुभव हुआ था। उस समय शिक्षार्थियों की संख्या बहुत ही अल्प थी। पढ़े-लिखे लोग ज्ञान-प्राप्ति के लिए और स्फूर्ति के लिए अंग्रेजी में ही वाचन किया करते थे। देशी भाषा में ग्रथों का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करने या स्फूर्ति पाने की कल्पना किसी को हो, ऐसी परिस्थिति ही नहीं थी। ऐसे समय में स्वामी विवेकानन्द के भव्य, उदात्त जीवनक्रम का अवलोकन समाज ने किया। पददलित राष्ट्र के एक युवा संन्यासी की वह दिग्विजय थी। वह वेदांत-केसरी की गर्जना थी। सारी मानव जाति के अन्त:करण को स्पर्श कर सके ऐसा वह आह्वान था। स्वामी जी की सारी शिक्षा का मूलमंत्र है — मानव मात्र के दिव्यत्व एवं एकत्व का घोष। वह एक ऐसी दिव्य अनुभूति थी, जो पाश्चिमात्य जगत ने पहले कभी सुनी भी नहीं थी। "यह अनुभूति विश्व के प्रत्येक मानव को कराना ही तुम्हारा जीवन कार्य है, हिन्दू राष्ट्र जीवित है, वह केवल इस महत्वपूर्ण कार्य को पूर्ण

महामृत्युंजय भारत पुस्तक से साभार प्रकाशित यह लेख स्वामी विवेकानन्द जन्म शताब्दी समारोह, वर्ष १९६३ में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के प्रणेता बाबा साहब आपटे जी द्वारा दिया गया भाषण है। जिसकी प्रासंगिकता आज भी पूर्ववत् है।

करने के लिए ही है", यह संदेश स्वामीजी ने अपने देशबंधुओं को दिया। अपनी उन्नति के लिए पाश्चिमात्य जगत से विज्ञान की तथा अन्य प्रकार की जो सहायता ली जा रही थी, उस पर उन्होंने चेतावनी दी थी कि "बिना कुछ दिए किसी से कुछ लेना योग्य नहीं, बल्कि वह हानिकारक होगा। (स्वामी जी की यह चेतावनी आज अक्षरश: सत्य प्रमाणित हुई है) पश्चिम को देने के लिए तुम्हारे पास बहुमोल ज्ञानराशि है। अपने जीवन में उस ज्ञान का आविष्कार कर विश्व में आगे बढ़ो। केवल मात्र घर में ही बैठे न रहो। पूर्व-पश्चिम की लेन-देन से ही मानव का एकत्व सिद्ध होने वाला है, मानवता की प्रगति होने वाली है। वह तुम्हारा परम्परा से चला आ रहा नियत जीवन कार्य है। उस कार्य को करने में चूक जाने से तुम्हारी अवनति हुई है। अत: उठो, आलस को त्याग दो और काम शुरू करो" — यह शिक्षा देते हुए स्वामी जी भारत भर में भ्रमण करते रहे। ध्येयशून्य अंत:करणों में ध्येय के प्राण फूंकते ही सर्वत्र कर्म चेतना उत्पन्न हुई। उस समय का इतिहास पढ़ने वाले इसे मानते हैं। इसी कारण स्वातंत्र्य आन्दोलन का जोर बढ़ा, क्योंकि परतंत्र भारत का वह दिव्य संदेश कैसे देता?

दिव्यत्व का साक्षात्कार

दिव्यत्व का साक्षात्कार स्वयं किए बगैर अगर कोई उपदेश देता फिरे तो उसके शब्दों में सामर्थ्य भी कहां से उत्पन्न होगा? राष्ट्रीय जीवन कार्य की पूर्ति के साधन के रूप में स्वातन्त्र्य प्राप्त कर हजारों वर्षों से तमोगुण में लीन अपने दीन-दरिद्र देशवासियों की नारायण के रूप में पूजा करें, उसी में से चारित्र्य सम्पन्न संगठित बल निर्माण किया जाए, और इस प्रकार, स्वातंत्र्य का दर्शन करने के लिए ही यह कार्य किया जाए — यह सीधी-सीधी कार्यकारण भाव की शृंखला थी।

पर १५-२० वर्षों में जब यह आन्दोलन समाज में फैला तो अंग्रेजी-शिक्षा नहीं मिल पाने से उन लाखों देशवासियों तक स्वामीजी के विचार नहीं पहुंच पाये। मूल ग्रंथ वे पढ़ नहीं सकते थे। जिन्होंने विद्यार्थी दशा में वे ग्रंथ अंग्रेजी में पढ़े थे, उस नेतृ-वर्ग ने कर्मप्रेरणा के साथ उस ग्रंथ से योग्य मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए बड़े होने पर भी प्रौढ़ बुद्धि का उपयोग कर उस ग्रंथ का वाचन मनन नहीं किया। दरिद्रता से निकलने के लिए अंग्रेजों को हटाकर स्वराज्य प्राप्त करना है, यह विवेक शून्य एवं भ्रान्त कल्पना रखी गयी। अंग्रेजों द्वारा की जा रही आर्थिक लूट ही उनका बड़ा भारी पाप माना जाने लगा और इस ओर दुर्लक्ष्य किया गया कि उन्होंने अपनी विकृत शिक्षण प्रणाली के द्वारा हमें प्रज्ञाहत कर राष्ट्रियत्व की दूसरी ही कल्पना गले बांध दी है। अपनी इच्छा से ही हम विनाश की ओर बढ़ने लगे। कहां आत्मविश्वास और जगद्गुरुत्व संपादन के उत्तुंग धवलगिरि से निकली इस शती की प्रारम्भ की राष्ट्रीय स्वातंत्र्याकांक्षा की गरुड़ उड़ान और कहां मातृभू के टुकड़े करके ही क्यों न हो, अंग्रेजों का राज्य जाने में ही सन्तोष मानकर स्वीकार किया गया आज का स्वराज्य।

स्वराज्य मिले पन्द्रह वर्ष (अब ६५ वर्ष — संपा.) बीत गए, फिर भी एकत्व का साक्षात्कार नहीं हो रहा, यह बात जाने अनजाने हर किसी को खटक रही है। पर कितने लोग यह समझ सके हैं कि जैसे पिंजड़े में बंद तोते को रोज कौन खिलाने की परेशानी उठाये, इस कारण पिंजड़ा कहीं दूर फैंका जाने पर वह तोते की स्वतंत्रता नहीं, वैसी ही हालत आज हमारी है। राष्ट्रीय

जीवन कार्य का साक्षात्कार न होने से चारित्र्य संपन्न संगठित बल की नींव ही अभी तैयार नहीं हुई। स्तत्व की अनुभूति से पूर्ण एवं स्वावलंबन के मार्ग पर चलने वाला राष्ट्र ही संगठित बल उत्पन्न कर सकता है स्वातंत्र्य को आवश्यक अर्थ दिला सकता है। परन्तु भारत का स्वत्व क्या है, इसी का अनेक लोगों को ज्ञान नहीं।

स्वत्व का पुरस्कार

स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से इस स्वत्व का पुरस्कार किया था। अपने धर्मच्युत बन्धुओं को स्वधर्म में लाने के लिए कहा था। महावीर हनुमंतका आदर्श रखा था। पर उस मार्ग पर कोई बढ़ा नहीं। दुनिया किसी के लिए रुकती नहीं। इसी कारण जागतिक घटना क्रम का परिपाक रूप जो स्वराज्य आया, उसे ही हम स्वतन्त्रता मानने लगे। छाछ को ही दूध समझकर पिये जा रहे हैं। देश में सर्वत्र ढोंग फैल रहा है। स्वार्थ, भोग-विलास, लालसा, भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता का नग्न ताण्डव चल रहा है। शत्रु के हस्तक देशभर में संचार कर रहे हैं। हमारे यहां की महत्वपूर्ण खबरें जनता या सरकार के पास पहुंचने के पूर्व ही हमारे शत्रुओं के पास पहुंचती है। यह क्यों हुआ? हम सतर्क नहीं रहे, दुनिया के व्यवहार आंखें खोलकर नहीं किए, इसीलिए।

स्वामी विवेकानन्द जी ने पश्चिम से जो लेने के लिए कहा था, वह था उनकी दक्षता व संगठन कुशलता आत्मसात् करना। हम वह नहीं कर सके, इसी कारण यह अवस्था उत्पन्न हुई है। अंग्रेजी राज्य जाने के बाद खुशी में हमने पाश्चात्य जगत का बाह्यानुकरण बहुत किया और पश्चिम की उधारी पर अपना घर बसाने की आकांक्षा के मार्ग पर चलने के कारण उलटी ओर ही हमारे कदम पड़ रहे हैं।

स्वामीजी ने हमें गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए कहा था। साम, दाम, दण्ड, भेद पर यथायोग्य रीति से आचरण के लिए कहा था। पर उस ओर हमने कतई ध्यान नहीं दिया। स्वामीजी ने कहा था संस्कृत का अध्ययन करो। पर हमसे अंग्रेजी का मोह नहीं छूट रहा। स्वामी जी ने कहा था, भारत धर्म प्राण देश है। किन्तु हम धर्म को कोई महत्त्व नहीं दे रहे। स्वामी जी ने उच्च स्वर से घोषणा की, "कभी डरो मत, निर्भय बनो।" बलवान ही निर्भय हो सकता है, परन्तु हमने तो बल की उपासना की ही नहीं।

इस भविष्यद्रष्टा के अचूक मार्गदर्शन की ओर, उसकी शिक्षा की ओर क्या अभी भी हम दुर्लक्ष्य ही करते रहेंगे? यह प्रश्न काल पुरुष आज हमसे कर रहा है। इस विकट स्थिति में देश के मुट्ठी भर अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को ही नहीं, करोड़ों भारतीयों को उन्हीं की मातृभाषा में स्वामी विवेकानन्द का तर्कशुद्ध मार्गदर्शन उपलब्ध हुआ है। स्वामी जी का भावपूर्ण अन्त: करण आज उनकी मातृभाषा में ही उनसे बोलने लगा है, तो स्वतन्त्रता पूर्व जो वाणी हजारों युवकों को कर्मप्रवण करती थी, तेजस्वी बना रही थी, क्या वहीं आज लाखों-करोड़ों को योग्य मार्ग से चलने की प्रेरणा नहीं देगी?

स्वामी जी का साहित्य आत्मसात् करें

स्वामी जी का साहित्य इस भांति का है कि उसमें पंथ या सम्प्रदाय की गंध भी नहीं। उसमें किसी का उपरोध नहीं, विरोध नहीं, टीका नहीं। सारा विवेचन सीधा, सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। इस

साहित्य रूपी दर्पण में हमें अपना स्वरूप स्वच्छ दिखाई देता है और अपना वास्तविक परिचय भी मिलता है। पर औषधि कितनी भी गुणकारी क्यों न हो अलमारी में सजाकर रखने से या उसकी स्तुति गाने या सुनने से तो व्याधिहरण होगा नहीं। इसी भांति स्वामी जी के विचारों का किसी दूसरे द्वारा कराया गया परिचय इस कार्य में फलदायक नहीं हो सकता, यह ध्यान में रखकर स्वयं ही उनके ग्रंथ पढ़ने चाहिए। बार–बार उनका वाचन, मनन, चिंतन कर वे ओजस्वी विचार आत्मसात् किये जाने चाहिए, तभी वे आचरण में आयेंगे।

'तुरन्त दान महाकल्याण' जादू यहां नहीं होगा, यह ख्याल में रखना होगा। धार्मिक मनोवृत्ति से, लगन से इन ग्रन्थों का सतत वाचन किया जाना चाहिए। प्रतिदिन उन ग्रंथों से कुछ पढ़े बगैर सोया न जाय या भोजन न किया जाय, ऐसा नियम किया जाय। तरुण पीढ़ी को यह पौष्टिक खुराक मिलनी चाहिए। अभिभावक अपने बच्चों से और शिक्षक अपने छात्रों से यह जीवनदायिनी साहित्य पढ़वा लें और जितना समझ में आ सकता है, उतना आचरण में लाने पर जोर दिया जाय। केवल शब्दों को रट लेने से कुछ भी लाभ नहीं होगा।

भारतमाता की करोड़ों सन्तानें यदि इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक चारित्र्य सम्पन्न होकर साहस के साथ कार्यक्षेत्र में उतरेंगी और संगठित बल से शीघ्र ही देश के भाग्य को चमका देगी तो ही स्वामी विवेकानन्द की कल्पना का भारतवर्ष प्रत्यक्ष में अवतरित होगा। स्वामीजी के भाषण सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद रूप में उपलब्ध हैं।

हमें चाहिए कि आगामी पचास वर्षों तक धर्म ग्रंथ अध्ययन में हम रामायण, गीता, महाभारत आदि के साथ स्वामी विवेकानन्द का साहित्य भी सम्मिलित कर लें। यदि इस साहित्य का पाठ सामूहिक रूप से किया जाये तो और भी अच्छा हो। भारत ने स्वामी विवेकानन्द में भारत की आत्मा को पाया था। उनकी ख्याति देश-विदेश में फैल गई थी। यह सत्य है कि उन्हें आज तक किसी ने जगद्गुरु नहीं कहा है, किन्तु उनके जीवन की उपलब्धियां उन्हें राष्ट्रगुरु का सम्मान देने में सक्षम हैं। व्यास, बाल्मीकि और मनु के बाद स्वामी विवेकानन्द ने ही समस्त विश्व को ज्योतित करने का सुविचारित प्रयास किया था और इस प्रकार भारत के मानवतावाद को उचित महत्व दिलाया।

नूतन धर्मग्रंथ

भारत की जनता के लिए स्वामी जी के उपदेश अमूल्य हैं। वे हमें जीवन और कर्तव्य की सार्थकता विस्तार में समझाते हैं। हमें उनके साहित्य का मनन करना चाहिए। उनके विषय में भाषण सुनना और लेख पढ़ना ही काफी नहीं है। यह सौभाग्य की बात है कि स्वामी विवेकानन्द का समस्त साहित्य उपलब्ध है।

स्वामी जी के साहित्य को धर्म ग्रंथों जैसी मान्यता देने का काम अभी शेष है, ताकि उसका नियमित वाचन–पठन हो सके। रामायण और महाभारत को लोग नियम से पढ़ते हैं और परिणामत: उनमें निहित शिक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में सहायक रही है। वे आदर्श लोगों के चरित्र में थोड़े बहुत उद्भाषित होते हैं और इन्हीं आदर्शों ने हमें कालचक्र के अत्याचार और विपर्यय सहने की क्षमता दी है। वास्तव में रामायण, महाभारत, रामचरित मानस, ज्ञानेश्वरी, दासबोध,

गुरुग्रंथसाहब आदि ही हमारे राष्ट्र को अमरत्व दिए हुए हैं। अभी तक स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें इस श्रेणी में नहीं आ सकी हैं, यद्यपि यह स्थान उन्हें मिलना चाहिए था।

उनका पाठ रामायण, महाभारत की भांति प्रतिदिन किया जाये। हमारे धर्म ग्रन्थ व्यक्तिगत मुक्ति हेतु मार्ग दिखाते हैं और यज्ञ–हवन आदि करने का प्रावधान भी उनमें है किन्तु स्वामी जी की शिक्षा है – 'आत्मनो मोक्षार्थम् जगद् हिताय च'। देश, समाज और धर्म के प्रति कर्तव्यों का हमारे ग्रंथों में विशेष उल्लेख नहीं किया है। यही कारण है कि वे उतने प्रभावकारी नहीं हैं। स्वामी विवेकानन्द के लेखन में स्पष्ट रूप से इस मूल कर्त्तव्य की बात कही गई है जिसे एक औसत बुद्धि वाला मनुष्य भी समझ सकता है और अब, यह सब जन सामान्य की भाषा में आ गया है।

नया युगधर्म

यह सामान्यत: स्वीकार किया जाता है कि आधुनिक समय के अनुकूल नई स्मृतियां बनें, हमारे युगधर्म का नई तरह भाष्य हो। किन्तु जो इसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, वे यह नहीं समझते कि स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें इस कार्य की सम्पूर्णत: पूर्ति करती हैं। हम उनके उपदेशों में से चुनाव कर सकते हैं। कुछ लोग उनका 'ज्ञान–योग' पढ़ें, कुछ 'कर्मयोग'। 'सर्वधर्म परिषद्' या विदेशों में दिये उनके व्याख्यान पढ़ें जा सकते हैं। उनके पत्रों से भी बहुत कुछ ज्ञान मिल सकता है और फिर हम लोग प्रति सप्ताह एक स्थान पर बैठकर अपने स्वाध्याय का विनिमय कर सकते हैं।

यह सच है कि स्वामी जी के लेखन में कथा वस्तु नहीं है, जैसी कि रामायण, महाभारत में है। किन्तु यह समस्या गुरु ग्रंथसाहब, दासबोध और ज्ञानेश्वरी के साथ भी है। फिर भी ये सभी नियमित रूप से पढ़े जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी अद्वैत पर इतने रोचक और स्पष्ट रूप से लिखा है कि हर आदमी उसे समझ सकता है। उनके विषय विवेचन में नीरस दर्शन या अस्पष्टता नहीं है, व्याख्या में कहीं भी अभिव्यक्ति की कमी नहीं है। एक-एक शब्द कर्म की प्रेरणा देता है।

यह कहा जा सकता है कि एक संगठित और चैतन्य युक्त अखंड भारत की कल्पना का गोस्वामी तुलसीदास, गुरुनानक, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, संत ज्ञानेश्वर अथवा रामदास की अपेक्षा स्वामी विवेकानन्द को कही अधिक श्रेय है।

यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि भगवान व्यासकृत महाभारत, गीता और वाल्मीकिकृत रामायण के बाद यदि कोई साहित्य जनमानस में, चाहे वह किसी प्रदेश या जाति का हो, प्रेरणा और स्फूर्ति भरता है तो वह है स्वामी विवेकानन्द का लेखन। उन सभी को, जो राष्ट्र भावना को बल देने में लगे हैं, यह बात हृदयंगम कर लेनी चाहिए। जन्म शताब्दी पर सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाला विवेकानन्द साहित्य का अनुवाद युग की आकांक्षाओं को वाणी और प्रेरणा देता है। भारतमाता की करोड़ों सन्तानें उससे स्फूर्ति ग्रहण कर, प्रयत्नपूर्वक चारित्र्य सम्पन्न होकर, साहस के साथ, कार्यक्षेत्र में उतरेंगी और संगठित बल से शीघ्र ही देश के भाग्य को चमका देंगी, तभी स्वामी विवेकानन्द की कल्पना का भारत साकार होगा।

स्वामी विवेकानन्द और कार्ल मार्क्स

डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल

विवेकानन्द तथा कार्ल मार्क्स १९वीं शताब्दी के दो महान परिवर्तनकारी व्यक्तित्व थे। जहां कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) ने पाश्चात्य जगत में भौतिकवाद को एक नवीन दिशा दी, वहीं स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२) ने भारतीय दर्शन व आध्यात्मिकता के संदेश से विश्व को झकझोर दिया।

पारिवारिक परिवेश में समानता

दोनों के प्रारम्भिक जीवन में कुछ साम्य दृष्टिगोचर होता है। दोनों १९वीं शताब्दी में जन्मे थे। दोनों के पिता जाने-माने कानूनविद् थे। दोनों के पिताओं ने उन्हें अपने-अपने ढंग से जीवन दृष्टि दी। दोनों गहन अध्ययनशील थे तथा इतिहास व दर्शन में गहरी रुचि रखते थे। दोनों ने गरीबी का प्रत्यक्ष अनुभव किया तथा जीवन में उससे जूझे थे। मार्क्स ने पहले १७ वर्ष रोमन लोगों द्वारा निर्मित त्रियेर नगर में बिताए, जहां ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं के साथ वहां की मलिन बस्तियों को देखा था। वहीं स्वामी विवेकानन्द ने १८९०-१८९३ तक परिव्राजक के रूप में भारत में सर्वत्र घूमकर भारत की गरीबी के दर्शन किए तथा उसकी अनुभूति की थी।

मार्क्स के पिता समृद्धशाली, धैयपूर्ण जीवन जीने के आदी तथा प्रभावशाली वकील थे। लौकिक प्रतिष्ठा तथा व्यवसाय को ध्यान में रखते हुए उन्होंने यहूदी धर्म को छोड़कर ईसाइयत को अपनाया था। उन्होंने कार्ल मार्क्स को एक सफल वकील बनाने तथा समृद्धि की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया। मार्क्स ने क्रमश: बान, बर्लिन व जेना विश्वविद्यालय में पकढ़कर दर्शन शास्त्र में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। वे शिक्षक बनना चाहते थे पर बने एक पत्रकार तथा लेखक। एक जर्मन अतिवादी उद्योगपति के पुत्र फ्रेडरिक एंजिल (१८२०-१८९५) से १८४४ में उनकी भेंट उनके जीवन में मोड़ देने में अत्यंत महत्वपूर्ण रही। उसने मार्क्स की धन तथा विचारों से सहायता की। मार्क्स उसे 'वास्तविक शब्दकोष' मानते थे। बाद में दोनों ने मिलकर नए वैचारिक सिद्धान्तों का प्रतिपाद न किया।

स्वामी विवेकानन्द एक समृद्धशाली वकील विश्वनाथ दत्त के पुत्र थे जिन्होंने अपने पुत्र नरेन या नरेन्द्र को तर्क तथा बुद्धि से विकसित किया तथा माँ भुवनेश्वरी देवी ने इतिहास और पौराणिक प्रसंगों को सुनाकर भावुक बनाया था। उन्होंने पाश्चात्य तथा भारतीय दर्शन तथा इतिहास का गंभीर अध्ययन किया तथा उनकी रुचि दर्शन में थी। रोलां के शब्दों में, 'विवेकानन्द कभी भी द्वितीय नहीं बल्कि सर्वदा अद्वितीय थे'। उनके कॉलेज के प्राचार्य हेस्टी के मत में, 'जर्मनी व इंग्लैड के विश्वविद्यालयों में उन जैसा कोई प्रतिभाशाली विद्यार्थी न था।' नवम्बर, १८८१ में उनकी स्वामी

रामकृष्ण परमहंस से प्रथम भेंट एक आश्चर्यजनक प्रसंग था जिसने दुनिया के एक बड़े नास्तिक को विश्व का सबसे बड़ा आस्तिक बना दिया। सितम्बर, १८९३ के शिकागो विश्व सम्मेलन में वे विश्व के महानतम पुरुष बन गए।

विचारों में मौलिक अन्तर

जहां कार्ल मार्क्स ने इंग्लैण्ड आदि देशों की औद्योगिक क्रान्ति तथा फ्रांस की विभिन्न क्रान्तियों तथा पाश्चात्य दार्शनिकों का गंभीर अध्ययन किया था, वहीं स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य दर्शन के साथ वेदों से लेकर वर्तमान तक के सभी भारतीय दर्शन ग्रंथों तथा शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन, चिंतन, मनन किया था। दोनों ने जर्मन के विख्यात दार्शनिक हीगेल को भी पढ़ा था, परन्तु दोनों के निष्कर्ष एक-दूसरे से भिन्न ही नहीं, बल्कि विपरीत थे। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगेल, जो भारतीय जीवन दर्शन से अत्यन्त प्रभावित थे तथा जिन्होंने भारत को 'मनोकामना पूर्ण करने की भूमि' कहा था, ने द्वन्द्वात्मक सिद्धांन्त का विवेचन किया तथा इसे सोचने की प्रक्रिया बताया। निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए उन्होंने सततवाद, प्रतिवाद तथा संवाद का सहारा लिया।

कार्ल मार्क्स ने हीगेल को कल्पनावादी कहा और आर्थिक तत्व को ही निर्णय का मापदण्ड माना। मार्क्स ने विश्व में परिवर्तन का रहस्य उत्पादन के साधनों में ढूंढा तथा इसी आधार पर विश्व के इतिहास की मनमाने ढंग से भौतिकवादी व्याख्या की। इसी आधार पर मार्क्स ने तत्कालीन पूंजीवाद का विनाश तथा सर्वहारा के अधिनायकवाद की वकालत की। स्वामी विवेकानन्द ने वेदों, उपनिषदों आदि के गहन अध्ययन के आधार पर हीगेल के चिन्तन को सत्य के निकट पाया तथा विचारों की महत्ता को स्वीकार किया। उन्होंने जीवन में आध्यात्मिकता को सर्वोच्च स्थान दिया। आध्यात्मिकता को 'राष्ट्र का मेरुदण्ड' तथा 'मानवता की माता कहा'। भारतीय दर्शन के अनुकूल आर्थिक तत्व को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का केवल एक भाग ही माना।

वर्ग संघर्ष या एकत्व

कार्ल मार्क्स ने जीवन में भौतिक पक्ष को सर्वोच्चता दी जबकि स्वामी विवेकानन्द ने 'आत्म ज्ञान' को जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि बताया। स्वाभाविक रूप से कार्ल मार्क्स ने अतीत तथा वर्तमान में चहुं ओर आर्थिक संघर्ष पाया। उन्होंने समाज को दो भागों में बांटा, एक-जिनके पास सम्पत्ति है तथा दूसरा जो धनहीन हैं। इन दोनों में मार्क्स को सतत् वर्ग संघर्ष दिखा है। मार्क्स ने विश्व के समस्त समाजों के इतिहास को वर्ग संघर्ष का इतिहास कहा। वस्तुतः मार्क्स का यह विश्लेषण भ्रामक, तथ्यहीन, अव्यावहारिक तथा दोषपूर्ण था।

स्वामी विवेकानन्द ने वर्ग भेद को पूर्णतः अस्वीकार किया। उन्होंने न केवल मानव के अस्तित्व में एकता के दर्शन किए बल्कि पशु-पक्षी, पेड़-पौधों, यहां तक कि चर-अचर, सभी में एकत्व की बात कही। उन्होंने एकत्व उच्चतम देवताओं से लेकर निम्नतम व्यक्तियों में देखा। इसलिए उन्होंने अपने भाषणों में वीरता, साहस, भारतीयता तथा उसमें एकत्व के भाव को जगाते हुए कहा, 'गर्व से बोलो मैं भारतवासी, प्रत्येक भारतवासी हूँ। मेरा भाई है। तुम चिल्ला कर कहो, अज्ञानी भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, दरिद्र भारतवासी मेरा भाई है। उन्होंने किसी भी भेद को

स्वीकार नहीं किया बल्कि व्यक्ति की सेवा को ईश्वर की पूजा कहा। उल्लेखनीय है कि जिन-जिन देशों में मार्क्सवाद का प्रयोग हुआ वहां वर्ग संघर्ष तो समाप्त नहीं हुआ बल्कि एक नया वर्ग 'कम्युनिस्ट राजनीतिक नौकरशाह' खड़ा हो गया।

धर्म का स्वरूप

कार्ल मार्क्स ने तत्कालीन जर्मन विद्वान फ्यूरबैच (१८०४–१८७२) की भांति माना कि परमात्मा मनुष्य को नहीं बनाता बल्कि मनुष्य ने परमात्मा को बनाया। इसी आधार पर वे धर्म को 'अफीम की पुड़िया' 'भावहीन विचार' आदि कहते थे। इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को 'राष्ट्रीय आत्मा' कहा है। धर्म को 'राष्ट्र का प्राण' भी कहा। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भारत में प्रत्येक वस्तु धर्म के माध्यम से जानी जाती है। धर्म भारत के राष्ट्रीय दर्शन का स्थायी स्वर है। शिकागो में उन्होंने हिन्दू धर्म को विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया। धर्म तथा ज्ञान को एक-दूसरे का पूरक बतलाते हुए इसे 'चेतना का विज्ञान' कहा। उन्होंने बतलाया कि हिन्दू को राजनीति भी धर्म की भाषा में समझायी जा सकती है। पर साथ ही कट्टरपंथी न बन, उसे तर्क तथा अनुभव के आधार पर आंकने को कहा। उन्होंने सही अर्थों में हिन्दुत्व को मानव धर्म बतलाया।

राष्ट्रवाद का प्रश्न

मार्क्स के चिन्तन में ऐसे वर्गहीन, राज्यविहीन, धर्मविहीन समाज की कल्पना है जिसमें न कोई राज्य है, न सरकार, न प्रजातंत्र, न कोई संसदीय व्यवस्था और न ही कोई राष्ट्र का विचार। यदि कोई विचार है भी, तो वह नकारात्मक तथा ध्वंसात्मक है। वस्तुत: यही नकारात्मक चिन्तन विभिन्न देशों में राष्ट्रवादी शक्तियों द्वारा मार्क्सवाद के पतन का कारण बना। स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीयता के पोषक ही नहीं बल्कि मार्गदर्शक भी थे। उन्होंने विश्व के राष्ट्रों का उत्थान और पतन का विश्लेषण करते हुए प्रश्न किया कि यूनान, रोम, स्पेन, मंगोल आदि आक्रमणकारी राष्ट्र अब कहां है? उन्होंने भारत को विश्व का प्राचीनतम् राष्ट्र माना तथा अमेरिका को 'बच्चा राष्ट्र' कहा। उन्होंने आत्मविश्वास के साथ वर्तमान राष्ट्रों के बारे में सिंह गर्जना करते हुए कहा, 'इन मुट्ठी भर राष्ट्रों में से एक भी तो दो शताब्दियों तक जीवित नहीं रह सकता। किन्तु हमारी जाति की संस्थाएं युगों-युगों की कसौटी पर खरी उतरी है। उन्होंने भारत को विश्व का सर्वाधिक नैतिक परायण राष्ट्र माना है। क्योंकि यह अध्यात्मिकता पर टिका है। उन्होंने पुन: कहा 'मेरा विश्वास है कि भारतीय राष्ट्र समस्त राष्ट्रों में अत्यधिक सदाचारी और धार्मिक राष्ट्र है। किसी दूसरे राष्ट्र की तुलना हिन्दुओं के राष्ट्र से करना निंदा के समान पातक होगा।'

परिवार की संरचना

कार्ल मार्क्स तथा उसके मित्र फ्रेडरिक एंजिल ने परिवार के सम्बंध में अपनी पहली सम्मिलित पुस्तक 'होली फैमिली' (१८४४) लिखी। वस्तुत: पुस्तक में शीर्षक के विपरीत परिवार व्यवस्था की अपवित्रता का ही वर्णन किया गया है। परिवार का चित्रण भौतिकतावादी दृष्टिकोण से किया गया है। उनके अनुसार, 'आधुनिक एकनिष्ठ विवाह व परिवार नारी की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है ..... परिवार में पति पूंजीपति होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है।' उनका विचार है कि सामाजिक क्रान्ति से वर्तमान दौर में व्यक्तिगत परविार निश्चित रूप

से लुप्त हो जाएगा और बच्चे (वैध हो या अवैध) राज्य की देख-रेख में रहेंगे। इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द भारतीय समाज का आधार नारी की प्रतिष्ठा तथा परिवार की सर्वोच्च संस्कार स्थली मानते थे। उन्होंने अपने अनेक भाषणों में भारत में स्त्री जीवन का आरम्भ और अंत मातृत्व में बतलाया। उन्होंने महिला की अवस्था को राष्ट्र की प्रगति का थर्मामीटर, संस्कृति का संरक्षक तथा सांस्कृतिक उन्नति व आध्यात्मिकता का एक सच्चा पैमाना बतलाया।

सफलता का मार्ग

कार्ल मार्क्स ने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिंसा, क्रान्ति या जैसे भी सम्भव हो, प्राप्त करना बतलाया। इसमें नैतिकता, स्वतंत्रता तथा वैधता का कोई स्थान नहीं है। उद्देश्य की पूर्ति के जबरदस्ती एकत्रीकरण, विलीनीकरण, अपने सोवियत संघ तथा चीन के प्रसंग में सोवियतीकरण या चीनीकरण में वे जरा भी नहीं हिचके। स्वामी विवेकानन्द ने उपरोक्त मार्ग को सर्वथा अस्वीकार्य बताया है। व्यावहारिक रूप से मार्क्स की सभी भविष्यवाणियां भी गलत साबित हुईं। आखिर में प्रश्न है कि कार्ल मार्क्स तथा स्वामी विवेकानन्द ने अपने देश तथा विश्व को क्या दिया? मार्क्स के निधन को लगभग १३० वर्ष हो गए परन्तु भयंकर हिंसा, नरसंहार, १० करोड़ व्यक्तियों की हत्या, अमानुषिक यातनाओं के पश्चात् विश्व के किसी भी देश में वर्गहीन, राज्यविहीन, धर्मविहीन समाज की रचना नहीं हुई। मार्क्सवाद ने ही दिया रूस में क्रूर तथा अत्याचारी अधिनायकवादी लेनिन, स्टालिन, ब्रेझनिव, चीन में हत्यारे माओत्से तुंग वे दंग पॉलैंड में जार, चैकोस्लोवाकिया में गुस्तावो हुसाक हंगरी में जनोस कादर, रोमानिया में पेटरू ग्रोत्र, निकोलई चेसस्क्यू, पूर्व जर्मनी के एरिच हेनोकेर, उत्तरी कोरिया में किम इल सुंग तथा कम्यूचिया में पोल पोट आदि। इन सब देशों के इतिहास विश्व की डरावनी स्मृतियों का भाग बन गए हैं।

इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन के कुल ३९ वर्षों में विश्व को मानव सेवा, विश्व बन्धुत्व तथा शान्ति, स्वतंत्र चिन्तन का दिव्य संदेश दिया। उन्होंने भारत में धर्म तथा आध्यात्मिकता के आधार पर देश में धार्मिक तथा सामाजिक पुनर्जागरण किया। उन्होंने देश की भावी पीढ़ी में देशभक्ति, स्वाभिमान, आत्मविश्वास तथा आत्म गौरव जगाया। उनसे प्रेरणा लेकर महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री गुरुजी ने राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त किया। आज भी रामकृष्ण मिशन, अद्वैत आश्रम तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघ, उनके संदेश के अनुसार राष्ट्र में देशभक्ति को सुदृढ़ करने में लगे हैं। समय की मांग है कि स्वामी विवेकानन्द की १५०वीं वर्षगांठ पर राष्ट्र जागरण तथा राष्ट्र के पुर्ननिर्माण में देश की युवा पीढ़ी भारतीय समाज की समस्त समस्याओं के निदान के लिए स्वामी विवेकानन्द की भावना में 'रोल मॉडल' तथा 'लाइट हाऊस' बने।

कार्यकारी अध्यक्ष
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
६/१२७७ए, माधव नगर
सहारनपुर, उ. प्र. – २७३००८

स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन

डा. ओम कुमार शर्मा

भारत अनादिकाल से ही आध्यात्मिक देश रहा है। आध्यात्मिक आदर्शों व जीवन की शिक्षा सदैव ही भारतवर्ष ने उन्मुक्त हस्त से प्रदान की है। सृष्टि के इतिहास में ऐसा कोई भी काल, युग या समय नहीं रहा है, जबकि इस भारतभूमि में विश्व को जड़मूल से झकझोर देने वाले चरित्र, महापुरुष, आदर्श व जीवन नहीं रहे हों। इसी सुदीर्घ आध्यात्मिक ऊर्जा की अबाधित परम्परा में उन्नीसवीं शतब्दी के उत्तरार्ध में जिस आध्यात्मिक शक्ति का आविर्भाव हुआ था, वह शक्ति विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुई। स्वामी विवेकानन्द भारतवर्ष की विद्या, बुद्धि, चिन्तन, तेजस्विता, ऊर्जस्विता, उदात्तता, महानत्ता, विशालता, सार्वभौमिक लोकोत्तर चिन्तन व व्यावहारिकता के पूर्ण व आदर्श प्रतिनिधि थे। जिस काल में उनका प्रादुर्भाव हुआ, वह युग भारतवर्ष के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक जीवन का एक विप्लवकारी काल के समान था। भारतीय समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक अवधारणाएं कार्य कर रहीं थीं। केशवचन्द्र सेन आदि का ब्रह्मसमाज, दयानन्द का आर्यसमाज, ईस्टइण्डिया कम्पनी का तथाकथित आदर्श राजनैतिक उपनिवेशवाद इत्यादि के उथल-पुथल युक्त वातावरण में ही भारत की उस प्राचीन सनातन प्रज्ञा का आविर्भाव श्री रामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानन्द (गुरु-शिष्य)के रूप में हुआ। इन गुरु-शिष्य द्वयी के रूप में ही मानो भारत की आत्मा ने प्रत्यक्षरूप से अवतरण करके भारत में मची भौतिक धमाचौकड़ी को एक दिशा व समाधान प्रदान किया। भारतवर्ष की न केवल तात्कालिकी दशा का, अपितु भावी दशा के संकेत और उसके समाधान का मार्गदर्शन स्वामी विवेकानन्द जी ने जिस प्रकार से किया, वह सर्वदा एक प्रकाशस्तम्भ की भांति कार्य करता रहेगा। भारत की चिर सनातन सिद्धान्तों की सुदृढ़ व कालजयी आधारशिला पर भारत की वर्तमान व भविष्य की अट्टालिका को जिस प्रकार से स्वामी जी ने स्थापित करके दिखाया वह अनुपम व अतुलनीय ही नहीं अपितु शाश्वत व सार्वभौमिक भी हैं। इस लेख में उनके द्वारा कतिपय सार्वभौमिक व शाश्वत चिन्तनों के संक्षिप्त अंशों को ही प्रकाशित करने का उपक्रम किया गया है। जिससे कि उनके द्वारा प्रदर्शित राष्ट्रोत्थान के मार्गों, सिद्धान्तों व समाधानों का परिचय वर्तमान समाज व भावी पीढ़ी को प्राप्त हो सके।

भारत की विशिष्टता

फरवरी, १८९७ में 'दि हिन्दू' समाचार पत्र के एक प्रतिनिधि के साथ एक साक्षात्कार में

'विदेशों की बात और देश की समस्याएँ' (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ४, पृष्ठ २४९–२५६) विषय पर स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि भारत की विशिष्टता धर्म है और इसके अतिरिक्त अन्य बातें गौण हैं।

वास्तव में 'धर्म' शब्द के बारे में जो विचारधाराएँ वर्तमान समाज में प्रचलित है तथा जो भी अर्थ समाज में व्याप्त हैं, वे शास्त्रीय व वैदिक परम्परा के अर्थों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। यही कारण है कि स्वामी जी जब भारतीय धर्म, वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म की बात करते हैं तो उनका तात्पर्य धर्म के व्यावहारिक व पारमार्थिक इन दोनों ही अर्थों में होता है। यही कारण है कि उन्होंने वेदान्त को संसार के सभी धर्मों में तार्किक या तर्कसंगत माना है। वेदान्त की इसी महानता के कारण भारतीय धर्म का अर्थ अन्धविश्वास नहीं है अपितु तर्कसंगत व अतीन्द्रिय अनुभव ही धर्म की सुदृढ़ आधारशिला है। जब तक इन सार्वभौमिक सैद्धान्तिक धर्म के अर्थों को ग्रहण नहीं कर लिया जाता, तब तक कोई भी स्थिति या दशा संसार को श्रेष्ठ नहीं बना सकती। यही कारण है कि न केवल भारतीय, अपितु विदेशी विचारक चाहे वे साम्यवादी, समाजवादी, आदर्शवादी या नीतिवादी हों, अपने-अपने सिद्धान्तों के लिए एक ऐसा 'आध्यात्मिक आधार खोजने में लगे हुए हैं, परन्तु वह आध्यात्मिक आधार केवल वेदान्त में ही है।'

आज भारत ही नहीं विश्व भी एक ऐसे मार्ग की खोज में लगा हुआ है, जो कि विश्व को शान्त, सभ्य व उन्नत बनाए। परन्तु इसका समाधान प्राचीन भारतीय वेदादि शास्त्रों में ही है। स्वामी जी ने इसी तथ्य का प्रचार अपने जीवन में किया। परन्तु अत्यन्त पीड़ा का विषय है कि भारत के वंशजों ने स्वामी जी के दिशानिर्देशों, समाधानों, उपदेशों, वर्जनाओं आदि से कोई लाभ नहीं उठाया। इसी कारण वर्तमान में जो भारतवर्ष की दुर्दशा व पतन हो रहा है उसका मूल कारण भी स्वामी जी सदृश अनेक महान विचारकों के सार्वभैमिक व सार्वकालिक विचारों का तिरस्कार व अवहेलना ही है।

देश प्रेम

राष्ट्र की कितनी पीड़ा स्वामी जी में थी इसकी कल्पना सहज नहीं है। उनका रोम-रोम देश की तत्कालीन दुर्दशा को देखकर त्राहि-त्राहि कर उठता था। तथाकथित देश-प्रेमियों के लिए उन्होंने देशप्रेम की अपनी विशेष परिभाषा प्रदान की थी, जो आज भी उतनी ही प्रासङ्गिक है, जितनी कि उनके युग में थी। तदनुसार देशप्रेम के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है। हार्दिक सम्वेदना, प्रबल इच्छा (कष्टों को पार करने की) व पर्वत समान दृढ़ता। सम्वेदना के रूप में उन्होंने अपने ही कथन का विस्तार करते हुए कहा है कि "सर्वप्रथम हमें हृदय की गहराईयों से सोचना चाहिए। क्योंकि बुद्धि व तर्क में क्या है? यह केवल कुछ पग चलते हैं और वहीं रुक जाते हैं। केवल हृदय से ही प्रेरणाएं आती हैं। प्रेम अत्यन्त असम्भव द्वारों को भी खोल देता है तथा प्रकृति के समस्त रहस्यों का द्वार ही प्रेम है। अत: ऐ मेरे देशप्रेमियों! हृदय से अनुभव करो। क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो? क्या तुम अनुभव करते हो कि लाखों-लाखों देवताओं व ऋषियों के वंशज असभ्य व गंवारों के पड़ोसी बन चुके हैं? क्या तुम सोचते हो कि लाखों व्यक्ति भूख से पीड़ित हैं

और लाखों व्यक्ति कई शताब्दियों से ही भूख से पीड़ित होते आ रहे हैं? क्या तुम विचारते हो कि अज्ञान घने काले बादल की भांति हमारे देश में छा गया है? क्या इसने तुम्हें प्राय: उन्मत्त(पागल) बना दिया है? क्या तुम एकमात्र विनाश के इस विचार से ग्रस्त हो चुके हो और अपने नाम, यश, पत्नी, पुत्र, सम्पत्ति व अपने शरीर को भी भूल चुके हो? क्या तुमने यह सब उपरोक्त कर लिया है? यही केवल देशप्रेमी होने का प्रथम पग है, सर्वप्रथम पग है। आप में से अधिकांश लोग यह जानते हैं कि मैं केवल धर्म संसद के लिए ही अमेरिका नहीं गया था, परन्तु यह भावनाओं व सम्वेदनाओं का भूत ही मुझमें था, जोकि मेरी आत्मा के साथ था। मैं सम्पूर्ण भारत में बारह वर्ष तक पैदल घूमा था और अपने देशवासियों के दु:खों के अन्त के लिए कोई भी मार्ग नहीं पा सका था। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया था। आप में से बहुत से लोग इस रहस्य को जानते हैं, जो कि मुझे उस समय जानते थे। धर्मसंसद की चिन्ता कौन करता था? क्योंकि यहां इस भारत में मेरा रक्त व मांस (मेरा देश) प्रतिदिन डूब रहा था, और कौन उनकी चिन्ता कर रहा था?"

यही मेरा प्रथम पग था। क्या तुम यह अनुभव कर सकते हो कि अपनी शक्तियों को व्यर्थ की बकवाद में व्यय करने के अतिरिक्त कोई मार्ग, व्यावहारिक समाधान अथवा निन्दा के स्थान पर कोई सहायता या दु:खों को कम करने के लिए कुछ मीठे शब्द, उनकी जीते जी मृत्यु से बाहर निकालने के लिए तुमने प्रयोग किए? फिर भी इतना होना ही केवल पर्याप्त नहीं है। क्या तुम उस इच्छा को प्राप्त कर चुके हो, जोकि पर्वत जैसी ऊँची बाधाओं को भी लांघ सके? यदि सम्पूर्ण संसार भी तलवार हाथ में लेकर तुम्हारे विरुद्ध खड़ा हो जाए, तदपि तुम उस कार्य को करने का साहस कर सकते हो, जिसे तुम न्याय समझते हो? यदि तुम्हारी पत्नी बच्चे भी तुम्हारे विरुद्ध हों, यदि तुम्हारा धन नष्ट हो जाए, यश मर जाए, सम्पत्ति विनष्ट हो जाए, तो भी क्या तुम अपने चिन्तित कार्य से चिपके रह सकते हो? क्या तुम दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग पर चलते हुए अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हो? क्या ऐसी सुदृढ़ता तुमने प्राप्त कर ली है? यदि इन तीन वस्तुओं (हार्दिक सम्वेदना, बाधाओं को लांघने की प्रबल इच्छा तथा झंझावातों में दृढ़तापूर्वक खड़े रहना) को प्राप्त कर चुके हों, तो तुममें से प्रत्येक मनुष्य आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। तुम्हें समाचार पत्रों में लिखने तथा भाषण देने की भी आवश्यकता नहीं है, तब तुम्हारा केवल चेहरा ही चमकेगा। तब चाहे तुम गुफा में भी रहो, तो भी तुम्हारे विचार सैकड़ों वर्ष पश्चात् भी चट्टानों जैसी दीवारों से बाहर निकलेंगे तथा सम्पूर्ण विश्व को भी आन्दोलित कर देंगे तथा तब तक आन्दोलित करते रहेंगे कि जब तक वे किसी विचारशील मस्तिष्क में गहरे नहीं जम जाते और वहीं से अपना कार्य प्रारम्भ नहीं कर देते। विचार सरलता व लक्ष्य शुद्धता ऐसी ही शक्ति होती है।

सांस्कृतिक गौरव व शिक्षा

भारत का भविष्य (विवेकाननद साहित्य, खण्ड ५, पृष्ठ १७९–१९७) नामक अपने लम्बे व्याख्यान में उन्होंने भारत की उन्नति के विषय पर पर्याप्त रूप से सभी पक्षों जैसे समाज, राजनीति, शिक्षा, राष्ट्रीय एकता, सहिष्णुता, संस्कार आदि पर प्रकाश डाला है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कुछ लोग कहते हैं कि भूतकाल या पीछे देखने से मनुष्य का पतन होता है, उन्नति नहीं। अत: केवल भविष्य को ही देखते रहना चाहिए। परन्तु यह सत्य नहीं है, भूत से ही भविष्य बनता है। अत: पहले

जहां तक हो सके पीछे देखो और पीछे जो अनन्त झरना बह रहा है, उसका जलपान करो, तत्पश्चात् आगे देखो व बढ़ो तथा भारत को महानतर, उच्चतर तथा प्रकाशतर बनाओ, जैसा कि वह पहले भी कभी न रहा हो। सर्वप्रथम हमें इस बात को स्मरण रखने की आवश्यकता है कि हमारे पूर्वज महान् थे। क्योंकि जब तक हम अपने महान् पूर्वजों को ही याद नहीं करेंगें, उनके प्रति आस्थावान्, श्रद्धावान् व निष्ठावान् नहीं होंगे, तो कैसे हममें देशप्रेम उत्पन्न हो सकेगा? आजकल जो शिक्षा हमारे बालक प्राप्त कर रहे हैं, वह केवल नकारात्मक शिक्षा है, ऐसी कोई भी शिक्षा या प्रशिक्षण जो नकारात्कम हो, वह मृत्यु से भी घातक होता है। जब बालक विद्यालय जाता है तो सर्वप्रथम पाठ वह यही सीखता है कि उसका पिता मूर्ख हैं। दूसरा पाठ यह सीखता है कि उसके दादा उन्मत्त (पागल) हैं। तीसरा पाठ वह यह सीखता है कि उसके अध्यापक पाखण्डी हैं। चौथा पाठ वह यह सीखता है कि सभी धार्मिक पुस्तकें झूठी हैं। इस प्रकार सोलह वर्ष की अवस्था में पहुंचते ही वह नकारात्मकता, जीवनहीनता तथा आधारहीनता की राशि ही बन जाता है। यही कारण है कि पचास वर्षों की इस शिक्षा के द्वारा एक भी चिन्तक मौलिक व्यक्ति में उत्पन्न नहीं हो पाया है। ऐसा मौलिक व्यक्ति, जो कभी उत्पन्न हुआ है, वह या तो अन्यत्र ही शिक्षित हुआ है या पुन: वह अपने पुराने विश्वविद्यालयों (संस्कृत विश्वविद्यालयों) में ही एक बार फिर से अपने अन्धविश्वासों को साफ करने के लिए गया है, तभी मौलिक बना है। शिक्षा केवल सूचनाओं की राशि नहीं है कि जो मस्तिष्क में रख दी जाए और वहां वह बिना पचे ही जीवन भर उपद्रव मचाती रहे। हमें जीवन-निर्माण, व्यक्ति-निर्माण व चरित्र-निर्माण सम्बन्धी विचारों को आत्मसात् करना चाहिए। इसे ही शिक्षा कहा जा सकता है, जिस ज्ञान से इन तीनों का निर्माण न हो पाए, वह शिक्षा नहीं हो सकती। अत: स्वामी जी के अनुसार भारतीय शिक्षा का आदर्श यही होना चाहिए कि हमें अपनी सम्पूर्ण भौतिक व आध्यात्मिक शिक्षा का दायित्व अपने ही हाथों में लेना होगा और यह पूर्ण राष्ट्रीय पद्धति तथा राष्ट्रीय विधि-विधानों से ही पूर्ण व्यावहारिक भी होगा। इन सभी प्रक्रियाओं के पालन करने में संस्कृत भाषा के ज्ञान की आवश्यकता है। रामानुज, चैतन्य, कबीर इत्यादि ने भी भारत की उपेक्षित जातियों की उन्नति के प्रयास किए थे, और अपने जीवन में ही उन्होंने आश्चर्यजनक परिणाम भी प्राप्त किए थे। परन्तु तत्पश्चात् की असफलताओं के बारे में भी व्याख्या की जानी चाहिए। इसका कारण स्वामी जी के अनुसार यही था कि उन्होंने उपेक्षित जातियों को तो ऊपर उठाया, परन्तु अपनी शक्तियों को संस्कृत भाषा को जनसामान्य में फैलाने में नहीं लगाया। महात्मा बुद्ध ने भी जनसामान्य में संस्कृत के अध्ययन को समाप्त कर दिया था। यद्यपि उन्होंने तत्कालीन जनसाधारण की भाषा (पाली) में ही उपदेश दिया। वह अत्यन्त महान था। परन्तु उसके साथ ही साथ संस्कृत का प्रचार करना भी आवश्यक था। ज्ञान तो आया, परन्तु प्रतिष्ठा व संस्कृति उसमें नहीं आई। यह संस्कृति ही होती है कि जो अनेक प्रकार के प्रहारों को झेल पाती है। यह संस्कृति ही संसार की कठिनाईयों व बाधाओं से रक्षा कर सकती है, न कि कोरा ज्ञान। हम सब आधुनिक काल में संसार के उन देशों को जानते है, जिनके पास ज्ञान का भण्डार है। परन्तु उसका क्या लाभ? वे राष्ट्र बाघ की तरह नृशंस हैं, वे असभ्य की भांति हैं, क्योंकि उनमें संस्कृति नहीं है। अत: जब तक ज्ञान के साथ-साथ संस्कृति नहीं दी जाती, तब तक जनसाधारण की उन्नत दशा में कदापि स्थिरता

नहीं आ सकती।

संगठन व राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता व संगठन के विषय में भी स्वामी जी का चिन्तन सार्वभौमिक व सार्वकालिक है। क्यों कोई संगठन अत्यन्त शक्तिशाली होता है? तुम्हें संगठन को केवल भौतिक वस्तु मात्र नहीं समझना चाहिए। क्या कारण है कि ४० लाख अंग्रेज ३०० लाख लोगों पर यहां (भारत में) शासन करते हैं? इस प्रश्न की मनोवैज्ञानिक व्याख्या क्या है? "ये चालीस लाख लोग अपनी इच्छाओं को एक साथ जोड़ देते हैं, जिसका अर्थ होता है, अनन्तशक्ति। परन्तु तुम (भारतीय) तीन सौ लाख लोगों की प्रत्येक की इच्छा दूसरे से अलग होती है।"

हमारे देश में यदि कोई मनुष्य खड़ा होकर महान् बनने की चेष्टा करता है, तो शेष जन उसे पूर्ण बल से गिराने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु यदि कोई विदेशी आकर हमें ठोकरें भी मारता है, तो हम सब उसे उचित समझते हैं, हम इसके आदी हो चुके हैं, क्या हम ऐसे नहीं हैं? क्या दास कभी महान् स्वामी हो सकते हैं? इसलिए इस दासता के भाव को त्यागो। केवल 'हमारी महान् मातृभूमि' यही प्रधान राग होना चाहिए। केवल राष्ट्र ही एकमात्र जाग्रत देवता होना चाहिए। यह विराट देवता, जिसके सब ओर हाथ, सर्वत्र पैर, सर्वत्र कान हैं, वही सबको व्याप्त करता है। अत: एकमन वाले होना ही समाज का रहस्य है। तुम्हें ध्यान से सुनना चाहिए कि भारत का भविष्य भी पूर्णरूप से केवल इसी एकत्व पर निर्भर है।

महाभारत में भीष्म पितामह ने शय्या पर लेटे हुए अपने उपदेश में धर्मराज युधिष्ठिर को भी कहा था कि हे युधिष्ठिर! मैंने बड़े-बड़े गणतन्त्रों को देखा है और वे ईर्ष्या से उसी प्रकार नष्ट हो गए जैसे कि बांस अपने स्वयं के घर्षण से ही नष्ट हो जाता है। वर्तमान में भी भारतवर्ष की प्रत्येक क्षेत्र में जो दुर्दशा हो रही है, उसका एकमात्र कारण यही ईर्ष्या बुद्धि तथा अनाधिकृत महत्त्वाकांक्षा ही है। इसी कारण आज भ्रष्टाचार व आतंकवाद भस्मासुर बनकर देश को तत्काल भस्म करने के लिए तैयार खड़ा है।

समाज सुधारक

इसी कारण प्रचारकों के विषय में भी उन्होंने अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि प्रचारकों को इस देश की प्राचीन संस्थाओं, प्रक्रियाओं व परम्पराओं को केवल शुष्क तर्क मात्र से ही खण्डित नहीं करना चाहिए, अपितु उनका गहनता से मनन करते हुए और उन्हें भूतकाल का श्रेय देते हुए ही अपना कार्य नि:स्वार्थ भाव से करना चाहिए। समाज सुधारकों को मैं कहता हूँ कि इन सबसे महानतर समाज सुधारक मैं स्वयं हूँ। वे सुधारक तो केवल छोटे से अंश को सुधारना चाहते हैं परन्तु मैं तो मूल व शाखाओं को भी सुधार देना चाहता हूँ। हमारा भेद केवल विधि में ही है। उनकी विधि विध्वंसात्मक है व मेरी विधि रचनात्मक। मैं सुधार में नहीं अपितु विकास में विश्वास रखता हूँ। मैं स्वयं को ईश्वर के स्थान पर रखने का साहस करते हुए अपने समाज को निर्देश देने का कार्य नहीं कर सकता हूँ। मैं तो केवल उस गिलहरी की भांति ही, जो रामसेतु के निर्माण हेतु अपना रेत का अंशदान देने मात्र में ही तृप्त थी, बनना चाहता हूँ। यही मेरी स्थिति है। यह आश्चर्यजनक राष्ट्रीय यन्त्र अनेक युगों से कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय जीवन की आश्चर्यजनक नदी हमारे सम्मुख

बह रही है। यह कहने का साहस कौन कर सकता है कि यह भली है या बुरी या इसे बहना होगा या वैसे? कौन इसकी गति को नियन्त्रित कर सकता है? हमारा तो केवल इतना ही कार्य है जैसा कि गीता कहती है कि फल को देखे बिना कर्म करें। राष्ट्रीय जीवन को उसके समुचित ईंधन से पूरित करें, उसका विकास स्वत: ही होगा। कोई भी उसकी उन्नति को निर्देशित नहीं कर सकता। इतिहास हमें सिखाता है कि जहां कहीं भी उन्मादी व हठधर्मी सुधार हुए हैं, उनके एकमात्र परिणाम अन्त में पराजय व असफलता ही हुए हैं। अत: जो कुछ हम कर सकते हैं, वह यह समझना ही है कि बुराई को नष्ट करने का सम्पूर्ण कार्य विषयनिष्ठ ही है, न कि वस्तुनिष्ठ। बुराई के विपरीत कार्य शैक्षणिक अधिक है, व्यावहारिक कम, चाहे हम कितनी भी बड़ी-बड़ी बातें करें। बुराई के प्रति सर्वप्रथम यही विचार करना चाहिए। यह हमें शान्ततर बनाता है तथा यह हमारे रक्त में से उन्माद व हठधर्मिता को भी बाहर निकाल फैंकता है। प्रत्येक व्यक्ति बुराई को दिखा सकता है, परन्तु मानवता का मित्र वही होता है जो कि कठिनाई में से बाहर निकलने का मार्ग ढूंढ लेता है। अन्यथा विश्व के सभी समाजों में कोई न कोई बुराई रहती ही है तथा उसे सभी जानते भी हैं। हमने अनेकों व्याख्यान, पर्याप्त संगठन, पर्याप्त पत्रिकाएँ चला ली हैं। परन्तु वह मनुष्य कहां है, जो हमें अपनी सहायता का हाथ प्रदान करके बाहर निकाले? वह मनुष्य कहां है, जो हम से वास्तविक प्रेम करे? वह मनुष्य कहां है, जिसे देशवासियों से सहानुभूति हो? अत: समस्त समाज सुधार की समस्या का समाधान इसी में है कि वे लोग कहां हैं, जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हें उत्पन्न करो।

स्वामी जी के विचारों के इन्हीं संक्षिप्त पक्षों पर प्रकाश डालने से उनकी गम्भीरता व सार्वभौमिकता का स्पष्टीकरण हो जाता है। इन्होंने न केवल भारत की महिमा का गान किया है, अपितु यहां के दोषों तथा कमियों को भी यथा अवसर यथेष्ट रूप से दर्शाया है। वर्तमान युग में जो सुरसा जैसी भयंकर, असाध्य समस्याएं हमारे देश व विश्व में दिखाई पड़ रही हैं, जैसे आतंकवाद, बेरोजगारी, नैतिकपतन, जातीयहिंसा, वर्गभेद, क्षेत्रवाद, साम्राज्यवाद, नक्सलवाद आदि सभी का समाधान स्वामी जी के तर्कसंगत, उदात्त, व्यापक, सार्वभौमिक व सार्वकालिक विचारों से किया जा सकता है। इन मूलभूत भारतीय सिद्धान्तों, मान्यताओं, विधि–विधानों को दूषित मानसिकता, जिसके अन्तर्गत किसी भी सन्यासी की कल्याणकारी शिक्षा को "शिक्षा का भगवाकरण" कहकर अपमानित किया जाता है, के द्वारा नहीं देखा जाया जाना चाहिए, अपितु बुद्धि व अनुभव की कसौटी पर कसकर ही आप्त पुरुषों की शिक्षाओं के समान ही इन भारतीय महापुरुषों का सम्मान करना चाहिए। किसी विचारक ने ठीक ही कहा है कि भारतवासी "यत्साहबोक्तं तत्प्रमाणम्" अर्थात् जो साहब (अंग्रेजों) ने कह दिया, वही प्रमाण मान लेते हैं। इस मानसिकता को त्यागना होगा। यही भारत के भविष्य के लिए श्रेष्ठ होगा।

प्राचार्य, श्रीव्यास संस्कृत महाविद्यालय
रघुनाथपुर, कुल्लू (हि.प्र.)
च. न. : ९४५९७–८४८१०

राष्ट्र प्रणेता युग द्रष्टा

चेत राम गर्ग

बालक नरेन्द्र का जन्म पिता श्री विश्वनाथ दत्त के घर माता भुवनेश्वरी की कोख से १२ जनवरी, १८६३ को कोलकत्ता में हुआ। नरेन्द्र का पूरा नाम श्री नरेन्द्रनाथ दत्त था। सन् १८८१ में नरेन्द्रनाथ स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में पहुंचे। आज तक अनेक साधु सन्तों से उनका एक प्रश्न रहता था कि क्या आपने ईश्वर को देखा है? कहीं भी उनका समाधान नहीं हुआ। स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भी यही प्रश्न पूछा गया। उत्तर मिला – हां, मैंने ईश्वर को देखा है, ठीक ऐसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूँ। स्वामी राम कृष्ण की वाणी में सुदृढ़ता और पूर्ण विश्वसनीयता थी। यहीं से नरेन्द्रनाथ का सत्य का अध्यात्म मार्ग प्रशस्त हुआ। इसी मार्ग में आध्यात्मिक अनुभूतियों का साक्षात्कार कर के वे स्वामी विवेकानन्द बने और इसी नाम से उनकी ख्याति विश्व भर में फैली। इसी साक्षात्कार से उन्हें राष्ट्र और समाज की सेवा की प्रेरणा मिली। सन् १८९० में वे भारत के भ्रमण पर निकले और तीन वर्ष तक भिन्न-भिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए स्वामी विवेकानन्द २४ दिसम्बर, १८९२ की रात को भारत भूमि के दक्षिण छोर कन्या कुमारी में हिन्द महासागर के तट पर पहुंचे। वहां २५ दिसम्बर को प्रात: जगज्जननी भगवती कन्याकुमारी के मन्दिर में स्वामी जी ने राष्ट्र जीवन की वेदना से व्याकुल हो कर माँ भगवती से प्रार्थना की – "हे माँ, यदि तुमने मुझे मेरे इन भारतवासी भाइयों की मुक्ति के लिए कार्य करने का सामर्थ्य नहीं दिया तो फिर इसकी पीड़ा देखने के लिए मुझे दृष्टि क्यों दी? क्या मेरे देशवासी जो ऋषियों की सन्तानें हैं, परतन्त्रता की बेड़ियों के जकड़े सदा निरादर, अज्ञानता, निर्धनता ही भोगते रहेंगे?"[१]

स्वामी जी मन्दिर से बाहर आए उनकी दृष्टि हिन्द महासागर के बीच खड़ी दो चट्टानों पर पड़ी। लोगों से पूछने पर जानकारी मिली कि इनमें से बड़ी चट्टान के बारे में मान्यता है कि इस पर भगवती कन्या कुमारी ने दाहिने पांव पर खड़े हो कर कैलाशवासी शिव की आराधना की थी। उस चट्टान पर भगवती का चरण चिह्न आज भी विद्यमान है। स्वामी जी ने इसी चट्टान पर ध्यान लगाने का निश्चय किया। उन्होंने समुद्र में छलांग लगाई और लगभग आधा किलोमीटर समुद्र तैरकर वे चट्टान तक जा पहुंचे। वहां उन्होंने २५, २६ तथा २७ दिसम्बर को तीन दिन और तीन रात ध्यान लगाया। ध्यान में उन्होंने भारतवर्ष के प्राचीन गौरव, कष्टपूर्ण वर्तमान तथा आशावादी भविष्य के

दर्शन किए और उन्होंने राष्ट्रमानस को जाग्रत करने, त्याग और सेवा के आधार पर राष्ट्र का पुनरुद्धार करने तथा पश्चिम में धर्म प्रचारक के रूप में जाने का संकल्प लिया।[२] इसका उल्लेख स्वामी जी ने स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखे एक पत्र में इस प्रकार किया है, "कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर तथा भारत की अन्तिम चट्टान पर बैठकर, मैंने एक योजना सोच निकाली। प्रत्येक देश में बुराइयां धर्म के कारण नहीं, धर्म के न मानने के कारण ही विद्यमान है। अत: धर्म का कोई दोष नहीं, दोष मनुष्यों का है। हमें अनुन्नत लोगों को उठाना है। इस ध्येय की सिद्धि के लिए मैं अपना जीवन न्यौछावर कर दूंगा।[३] स्वामी विवेकानन्द के जिस शिला पर साधना करके अपने कार्य हेतु प्रेरणा प्राप्त की जिससे वे राष्ट्र प्रणेता युग द्रष्टा बनें, वहां राष्ट्र समर्पित सेवाव्रती एकनाथ रानडे के प्रयत्नों से स्वामी विवेकानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर सन् १९६३ में एक भव्य स्मारक का निर्माण किया गया। यह स्मारक आज स्वामी विवेकानन्द शिला स्मारक के नाम से ख्यातिप्राप्त है। बाद में एकनाथ जी ने स्वामी जी के सपनों को साकार करने के कन्याकुमारी में विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना की। देश-विदेश के अनेक स्थानों तक अब इस केन्द्र का पर्याप्त विस्तार हुआ है।

१९वीं शताब्दी का भारत एक विशेष परिस्थिति से गुजर रहा था। एक ओर अंग्रेज अपने साम्राज्य की नींव को पक्का करने में लगा हुआ था और दूसरी ओर देश के सुधारवादी आन्दोलकारी नेता अंग्रेजी शिक्षा व राज से प्रभावित थे। वे अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन कर रहे थे। देश में आए अंग्रेजी राज को वरदान के रूप में परिभाषित कर रहे थे। ऐसी विकट परिस्थिति के अन्दर स्वामी विवेकानन्द ने भारत राष्ट्र के प्रणेता के रूप में भारतीय राष्ट्रवाद के लिए संजीवनी का काम किया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा तथा अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति का विरोध किया। स्वामी जी ने भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें अपने धर्म व अध्यात्म के अन्दर निहित पाई। उन्होंने देशवासियों को अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा का भाव रखने को कहा और अपने प्राचीन इतिहास से प्रेरणा लेने के लिए कहा। धर्म आधारित जीवन रचना के लिए त्याग और सच्चरित्रता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि भारतीय विभिन्न सम्प्रदायों में एकात्मता का भाव विद्यमान है। यह एकात्मता का भाव ही हमें आपस में जोड़ता है। वर्षों से परतन्त्र रहने के कारण हमने अपनी शक्ति को भुला दिया था। उन्होंने भारतीय युवाओं को अपने कर्तव्य बोध पर ध्यान देने का आह्वान किया और कहा कि हमें एक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र के रूप में विश्व के सामने उभरना है। हमें अपनी संस्कृति, धर्म व इतिहास पर गर्व होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द जी की स्पष्ट मान्यता थी कि हमारी इस पवित्र मातृभूमि का मेरुदण्ड, मूल भिति या जीवन-केन्द्र एकमात्र धर्म ही है।[४] राष्ट्र की समुन्नति के सभी आयामों पर स्वामी जी ने अपने विचार विस्तृत रूप में समय-समय पर वार्तालाप, भाषणों अपने लेखों में व्यक्त

किए हैं। जिनमें कुछ महत्त्वपूर्ण आयाम यहां प्रस्तुत हैं।

मातृभूमि की महिमा

स्वामी विवेकानन्द ने मातृभूमि की महिमा का गान पुण्य भूमि के रूप में किया है। स्वामी जी ने कहा, “यदि इस पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जिसे हम मंगलमयी पुण्यभूमि कह सकते हैं, यदि कोई ऐसा स्थान है जहां पृथ्वी के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना ही पड़ता है, जहां भगवान की ओर उन्मुख होने के पर्यत्न में संलग्न रहने वाले जीवमात्र को अन्ततः आना होगा, यदि ऐसा कोई देश है, जहां मानव जाति की क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्‌वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है जहां अध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है।” भारत भूमि ही ऐसी है जहां पर सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण रज पड़ी है। हमारी मातृभूमि ही हमारी शक्ति का केन्द्र है। इसकी रक्षा के लिए हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए। शिकागो विश्व सम्मेलन के उपरान्त स्वामी जी को कुछ वर्ष विदेशी भूमि पर रहना पड़ा था। भारत भूमि पर वापिस लौट कर स्वामी जी ने सर्वप्रथम मातृभूमि की रज से अपने आप को शुद्ध किया और उसके उपरान्त ही उन्होंने स्वागत में आई हुई जनता से वार्ता की। यह वह समय था जब स्वामी जी भारतीय अध्यात्म की धूम दुनिया में फेराकर आ रहे थे। जनता स्वामी जी की चरण रज को लेने के लिए लालायित थे तो स्वामी जी मातृभूमि की।

इतिहास से प्रेरणा

स्वामी जी ने अपने इतिहास से प्रेरणा लेने की बात की है। भारत का इतिहास अत्यन्त समृद्ध रहा है। कुछ विद्वान तो भारत की दुर्दशा के लिए इतिहास के प्रति अधिक लगाव को ही कोसते हैं। परन्तु स्वामी जी ने इस बात को सिरे से नकारा है। उनका कहना है, ***“मेरी धारणा के अनुसार तो सत्य इसके उल्टा ही है। जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत को भूली हुई थी, तब तक वह संज्ञाहीन अवस्था में पड़ी रही और अतीत की ओर उसकी दृष्टि जाते ही चारों तरफ पुनर्जीवन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं।”*** एक जगह स्वामी जी अतीत के विषय में इस प्रकार कहते हैं, “कितनी बार मुझ से कहा गया है कि अतीत की ओर नजर डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इस से कोई फल नहीं होता। यह सत्य नहीं है। अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः जहां तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकण्ठ उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महतर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ।” यूनान और रोम के साथ तुलना करते हुए स्वामी जी कहते हैं, “जब यूनान का अस्तित्व नहीं था, रोम भविष्य के अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ था, जब आधुनिक यूरोपवासियों के पुरखे जंगलों में रहते थे और अपने शरीरों को नीले रंग से रंगा करते थे, तब भी भारत क्रियाशील था। यही नहीं उससे भी पूर्व, जिसका इतिहास के पास कोई लेखा नहीं, जिस

सुदूर धुन्धले अतीत के गहन अन्धकार में झांकने का साहस परम्परा को भी नहीं होता, उस काल से अब तक, न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत से प्रसृत हुए हैं, पर उनका प्रत्येक शब्द अपने आगे शांति तथा पीछे आशीर्वाद के साथ कहा गया है। संसार के सभी देशों में केवल एक हमारे देश ने लड़ाई-झगड़ा करके किसी अन्य देश को पराजित नहीं किया-उनका शुभ आशीर्वाद हमारे साथ है।[५] हमारे पूर्वज महान थे। पहले यह बात हमें याद रखनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौन सा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा और अतीत के उसके कृतित्व पर भी। इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे, जो पहले से श्रेष्ठ होगा।

धर्म एवं अध्यात्म

स्वामी जी ने भारतवर्ष के प्रत्येक व्यक्ति में उस ईश्वर का स्वरूप देखा है जहां पर समाज के प्रत्येक वर्ग व जाति के साथ एकात्म बन्धुता के दर्शन होते हैं। उनके शब्दों में, "गर्व से कहो कि प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। तुम पूरे जोर से कहो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चांडाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं। कहो, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला है, जवानी की फुलवाड़ी और बुढ़ापे की काशी है।" यह हमारे राष्ट्रीय एकात्मता का भाव है। स्वामी जी का कहना था कि प्रत्येक देश का अपना एक राष्ट्रीय भाव होता है। यह भाव जगत के लिए कार्य करता है, यह संसार की स्थिति के लिए आवश्यक है। जिस दिन इसकी जरूरत नहीं रहेगी, उसी दिन उस जाति अथवा व्यक्ति का नाश हो जाएगा।[६]

भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वहीं राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का आधार है।[७] धर्म की कल्पना भारत की शेष विश्व से भिन्न है। जहां पाश्चात्य जगत एवं इस्लामी जगत में सम्प्रदाय को धर्म समझने की भूल की जाती है, वह भारत में नहीं है। उन्होंने कहा कि सब को एक ही धर्म को स्वीकार करना होगा। "एक ही धर्म से मेरा क्या मतलब है? यह उस तरह का एक ही धर्म नहीं, जिसका ईसाईयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है, हमारे विभिन्न सम्प्रदाय के सिद्धान्त तथा दावे कितने भी अलग क्यों न हों, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य है। उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्‌भुत विविधता के लिए गुंजाईश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है।[८] जब हम भारत राष्ट्र के अन्यन्तर राष्ट्रों के बारे में विचार करते हैं तो हम राजनीति, वाणिज्य नीति व बाह्य स्वाधीनता प्राप्ति के अपूर्व सुख आदि को महत्त्व देते दिखाई देते हैं। किन्तु भारतीय राष्ट्रीय चिन्तन का आधार यहां के धर्म में निहित है। इस बात की समझ हमारे यहां एक सामान्य व्यक्ति के अन्दर भी निहित है। हिन्दुओं के साथ धर्म, ईश्वर, आत्मा, अनन्त तथा

मुक्ति के विषय में बातें कीजिए और मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ, अन्यान्य देशों के दार्शनिक कहे जाने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा यहां का एक साधारण किसान भी इन विषयों में अधिक जानकारी रखता है।[९] धर्म भारत में जोड़ने वाली इकाई है न कि तोड़ने वाली। यदि यह कहा जाए कि आज भी विश्व के बुद्धिजीवी भारतीय धर्म मीमांसा को समझने में भूल करते हैं तो इसमें कोई अतिश्योक्ति न होगी। हमारे कोई भी सामाजिक सुधार अथवा राजनीतिक उन्नति को भी राष्ट्रीय स्तर पर उसी आध्यात्मिक उन्नति के परिपेक्ष्य में ही देखा जाता है। हमने देखा कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे बल, और यही नहीं, हमारे राष्ट्रीय जीवन की भी नींव है।[१०]

भारत का राष्ट्रीय आदर्श त्याग और सेवा है।[११] यह शिक्षा हमें हमारे ऋषि-मनीषियों से मिली है। स्वामी जी ने कहा-त्यागी सभी को समभाव से देखता है, सभी की सेवा में लगा रहता है। कोई भी सत्य तथा निष्कपटता को रोक नहीं सकता। यही हमारे राष्ट्रीय चरित्र की नींव है। इसके साथ स्वामी जी ने जीवन में सच्चरित्रता पर विशेष बल दिया है। कोई भी राष्ट्र इसलिए महान और अच्छा नहीं होता कि उसकी संसद में यह या वह कानून पास कर दिया है, बल्कि इसलिए होता है कि उसके निवासी महान तथा सच्चरित्र होते हैं।[१२] मनुष्य जगत् की सारी दौलत से बढ़कर मूल्यवान है चरित्र।

स्वामी जी ने कहा है, कि हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन है। आप अध्यात्म में विश्वास कीजिए या मत कीजिये, यदि राष्ट्रीय जीवन को दुरुस्त रखना चाहते हैं, तो आपको आध्यामिकता की रक्षा के लिये सचेष्ट होना होगा। एक हाथ से धर्म को मजबूती से पकड़े हुए, दूसरा हाथ बढ़ाकर अन्य जातियों से जो कुछ सीखना हो, सीख लीजिए। स्मरण रहे कि आप जो कुछ सीखें उसे मूल आदर्श का अनुगामी ही रखना होगा। तभी अपूर्व महिमा से मण्डित भावी भारत का निर्माण होगा।[१३] राजनीतिक श्रेष्ठता या सामरिक शक्ति प्राप्त करना किसी काल में हमारी जाति का जीवनोद्देश्य न कभी रहा हे, न इस समय है और याद रखो, न आगे कभी होगा।[१४] हाँ, हमारा दूसरा जो राष्ट्रीय उद्देश्य रहा है और वह है कि समग्र राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाना। साम्यवादी चिंतन पर बात करते हुए स्वामी जी ने कहा कि, "साम्यवादी सिद्धान्तों का आधार आध्यात्मिक होना चाहिए और वह आध्यात्मिक आधार केवल वेदान्त में है।[१५]

मातृ शक्ति

राष्ट्र संवर्धिनी नारी शक्ति वास्तव में इस राष्ट्र की मातृ शक्ति है। स्वामी जी का कहना है कि भारत में स्त्री जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व में ही होता है। प्रत्येक हिन्दू के मन में स्त्री शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण ही आता है।[१६] पूर्व की नारियों का पश्चिमी मापदण्ड से मूल्यांकन करना उचित नहीं। पश्चिम में नारी पत्नी है। पूर्व में वह माँ है। हिन्दू मातृ भाव को श्रद्धा

की दृष्टि से देखते हैं। यहां तक कि सन्यासियों को भी अपनी माँ के सामने अपना मस्तक भूमि पर टेकना पड़ता है। भारत में माँ ही परिवार का केन्द्र और सर्वोच्च आदर्श है।[१७]

हिन्दू स्त्रियां बहुत ही आध्यात्मिक और धार्मिक होती हैं। कदाचित् संसार की सभी महिलाओं से अधिक। यदि हम उनकी इन सुन्दर विशिष्टताओं की रक्षा कर सकें और साथ ही उनका बौद्धिक विकास भी कर सकें तो भविष्य की हिन्दू नारी संसार की आदर्श होंगी।[१८]

जहां पर स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, वे दु:खी रहता है, उस परिवार की, उस देश की उन्नति की आशा नहीं ही जा सकती। इसलिए पहले इन्हें ही उठाना होगा।[१९] पहले स्त्रियों को शिक्षा दो और बाकी उन्हीं पर छोड़ दो। अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी।[२०]

सीता भारत की आदर्श हैं, भारतीय भावों की प्रतिनिधि हैं, मूर्तिमती भारता माता हैं। जिस समाज ने सीता को उत्पन्न किया है, नारी के प्रति उसका आदर पृथ्वी पर अद्वितीय है।[२२]

युवा पीढ़ी में विश्वास

स्वामी जी का युवा पीढ़ी में अटूट विश्वास था। उनके आह्वान पर युवाओं ने राष्ट्र कार्य हेतु अपना जीवन दे दिया। स्वामी जी कहते हैं, मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्त्ता उनमें से आयेंगे। सिहों की भांति वे समस्त समस्या का हल निकालेंगे। मैंने अपना आदर्श निर्धारित कर लिया है और उसके लिए अपना समस्त जीवन दे दिया है। यदि मुझे सफलता नहीं मिलती तो मेरे बाद कोई अधिक उपयुक्त व्यक्ति आएगा और इस काम को संभालेगा और मैं अपना संतोष प्रयत्न करने में ही मानूंगा। आपके सामने है जन समुदाय को उनका अधिकार देने की समस्या। उनके पास संसार का महानतम धर्म है। सनातनी लोगों में अपने ऊपर अधिक विश्वास और अधिक शक्ति है, पर सुधारक केवल यूरोपीय लोगों के चंगुल में फंसते हैं और उनके अहंकार को उभारने में सहायक होते हैं। दूसरे देशों के जनसमुदायों की तुलना में हमारे जनसमुदाय देवता हैं। केवल यही देश ऐसा है, जहां दरिद्रता अपराध नहीं है। वे मानसिक और शारीरिक रूप से सुन्दर हैं। हमने उनकी इतनी अवज्ञा की है, उनसे इतनी घृणा की है कि उनका अपने ऊपर से विश्वास उठ गया है। उन्हें उनका अधिकार दीजिए और उन्हें अपने अधिकारों पर खड़ा होने दीजिए।[२३]

गांव-गांव तक शिक्षा का प्रकाश फैलाने के लिए स्वामी जी नवयुवकों के प्रति आश्वस्त हैं। वे शिकागो से दीवान श्री हरिदास बिहारीदास देसाई को भेजे एक पत्र में लिखते हैं, भारत में ऐसे नि:स्वार्थ, अच्छे एवं शिक्षित सैकड़ों नवयुवक मिल सकते हैं। दरवाजे पर धर्म को ही नहीं, शिक्षा को भी पहुंचाने के लिए इन लोगों को गांव-गांव घूमने दीजिए। मान लीजिए कि ग्रामीण अपने दिन भर का काम करके अपने गांव लौट आए हैं और किसी पेड़ के नीचे या कहीं बैठकर गप लड़ाते समय बिता रहे हैं। वहां कैमरे से ग्रह नक्षत्रों के या भिन्न-भिन्न देशों के या ऐतिहासिक दृश्यों के

चित्र उन्हें दिखाने लगे तो इस प्रकार ग्लोब, नक्शे आदि के द्वारा जबानी ही कितना काम हो सकता है। इस प्रकार नये-नये विचारों से, नीति से उनका परिचय होगा और वे उन्नततर जीवन की आशा करने लगेंगे।[२४]

राष्ट्र प्रणेता स्वामी विवेकानन्द ने प्रबुद्ध भारत के ऋषि-मुनियों द्वारा गवेषित अध्यात्म और धर्म का तत्त्व ज्ञान सारे संसार को प्रदान किया। इसी तत्त्व ज्ञान से भारत जगत गुरु के सिंहासन पर आरूढ़ रहा है। यही तत्त्व ज्ञान भारत की अस्मिता है। यह अस्मता केवल प्रबुद्ध समाज तक ही सीमित नहीं है, अपितु उस राष्ट्र के वनवासियों, गिरिजनों तथा पददलित जन समुदायों में भी सदा से ही विद्यमान है। यही अस्मता भारत की संस्कृति है। यही अस्मिता भारत की प्राणशक्ति है। भारतवर्ष की मातृ शक्ति ने इसका निरन्तर संर्वधन किया है। युवा पीढ़ी से स्वामी जी का आह्वान है कि राष्ट्र के नवयुवक भारत की प्रबुद्ध ज्ञान राशि से भारत के पिछड़े, लेकिन धर्म और अध्यात्म के प्रति श्रद्धावान् जनसमुदाय को जाग्रत करें, तथा गांव-गांव तक इस ज्ञान राशि के प्रकाश को फैलाएं। इसी से समृद्ध और समर्थ भारत पुन: प्रतिष्ठित होगा।

संयुक्त राष्ट्र महासभा के निर्णय के अनुसार ईस्वी सन् १९८५ का वर्ष विश्व स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष के रूप में मनाया गया। इस अवसर पर भारत सरकार ने स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिन १२ जनवरी को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। तब से इस दिन राष्ट्रीय युवा दिवस प्रतिवर्ष मनाया जाता है। मुख्यत: भारत सरकार के नेहरू युवा केन्द्र और हिमाचल प्रदेश सरकार के युवा सेवाएं एवं खेल विभाग के द्वारा युवाओं के लिए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। राष्ट्र की युवा शक्ति इन कार्यक्रमों से धैर्य, विवेक, उत्साह और कार्यक्षमता की ऊर्जा अर्जित करके राष्ट्र उत्थान के उच्च कार्य में सतत सक्रिय रहती है।

४ जुलाई, १९०२ (आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी, कलियुगाब्द ५००४, विक्रमी संवत् १९५९) को स्वामी जी का देहावसान हुआ। उन्होंने केवल ३९ वर्ष की अल्प आयु पाई, लेकिन इस अल्प आयु में वे राष्ट्र और समाज के लिए दीर्घकालीन चिरस्थायी कल्याणगामी बेजोड़ कार्य कर गए। स्वामी जी के अल्पकालीन जीवन से यह उक्ति चरितार्थ हुई है, ***एक दिन का जीवन भी कम नहीं, यदि सूरज का उजाला बनकर जीवन जिया हो।***

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
गांव नेरी, डाकघर खग्गल,
जिला हमीरपुर (हि. प्र.) – १७७००१

सन्दर्भ

१. स्वामी विवेकानन्द – भारतीय युवा शक्ति के नायक, विवेकानन्द केन्द्र हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर–३४२००३, द्वितीय संस्करण २०१२, पृष्ठ ३१।

२. वही, पृष्ठ ३४

३. विवेकाननद साहित्य, अद्वैत आश्रम, २ डिटी एण्टाली रोड़, कोलकत्ता, द्वितीय संस्करण, १९८९, खण्ड–२, पृष्ठ ३३८।

४. वही, खण्ड – ५, पृष्ठ ४४

५. वही, खण्ड –५, पृष्ठ ५

६. वही, खण्ड –५, पृष्ठ ६

७. वही, खण्ड –१०, पृष्ठ ४८

८. वही, खण्ड –५, पृष्ठ ११५

९. वही, खण्ड –५, पृष्ठ १८१

१०. वही, खण्ड –५, पृष्ठ ४४

११. वही, खण्ड –५, पृष्ठ १८२

१२. वही, खण्ड –५, पृष्ठ २६५

१३. वही, खण्ड –५, पृष्ठ २३४

१४. वही, खण्ड –५, पृष्ठ ५०

१५. वही, खण्ड –५, पृष्ठ ८–९

१६. वही, खण्ड –४, पृष्ठ २५२

१७. वही, खण्ड –१, पृष्ठ ३०९

१८. मेरा भारत – अमर भारत, स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण मठ, नागपुर–४४००१२, द्वितीय संस्करण २०११, पृष्ठ १२

१९. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड–१, पृष्ठ ३२४–३२५

२०. मेरा भारत – अमर भारत, पृष्ठ ६२

२१. वही, पृष्ठ ६४–६५

२२. वही, पृष्ठ ६०–६१

२३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ४, पृष्ठ २६१

२४. वही, खण्ड २, पृष्ठ ३६६

हिमाचल में स्वामी विवेकानन्द

एम.एस. मुखर्जी

हिमाचल आदिकाल से ही सन्तों एवं धर्माचार्यों को आकर्षित करता रहा है। स्वामी विवेकानन्द के लिए भी हिमालय चिरंतन शांति, धैर्य और आध्यात्मिक संतुष्टि का स्रोत रहा है। शिकागो की ऐतिहासिक धर्म सभा में भाग लेने पर विश्व भर में ख्याति अर्जित करने से पूर्व तथा इसके पश्चात् वह एक अनाम यायावर के रूप में कई बार हिमालय की गोद में आये। उन्होंने कश्मीर, अलमोड़ा और ऋषिकेश आदि स्थानों की अनेक बार यात्रायें की। इन यात्राओं के वर्णन स्वामी जी के लेखों, सम्भाषाणों, पत्रों तथा अन्य लेखकों के संस्मरणों आदि में मिलते हैं। परन्तु स्वामी जी की हिमालय के इस भाग की यात्राओं के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है, जिसे अब हिमाचल प्रदेश के नाम से जाना जाता है।

स्वामी जी को असहनीय दबाव झेलना पड़ा था। अत: इस प्रदेश की स्वास्थ्यबर्द्धक जलवायु और आह्लादकारी भूदृश्यों का आकर्षण उन्हें यहां खींच लाया। यह हिमाचलवासियों के लिए गौरव की बात है कि स्वामी विवेकानन्द स्वास्थ्य लाभ के लिए कुछ दिनों धर्मशाला में आकर रहे। वर्ष १८९७ में स्वामी जी अढ़ाई महीने के लिए अलमोड़ा में रहे। वहां विभिन्न समुदायों के लोगों, जिनमें काफी बड़ी संख्या आवासीय यूरोपीय लोगों की थी, ने उन्हें सुनने की याचना की और उनके सार्वजनिक सम्भाषणों को विशेष चाव से सुना। उसके बाद स्वामी जी ने अपने कुछ अनुयायियों के साथ तत्कालीन पंजाब व कश्मीर का व्यापक भ्रमण किया। उन दिनों पंजाब में आज के हिमाचल का काफी बड़ा भाग शामिल था। १२ अगस्त, १८९७ को स्वामी विवेकानन्द बरेली से अम्बाला पहुंचे। वहां वह एक सप्ताह तक ठहरे। स्वामी जी के अंग्रेज श्रद्धालु कैप्टन जे. एच. सेवियर तथा श्रीमती सेवियर शिमला से जाकर उन्हें अम्बाला में मिले।

सेवियर दम्पति सन् १८९६ में युवा सन्यासी विवेकानन्द से पहली बार लन्दन में मिले थे। यह अवसर स्वामी जी के सार्वजनिक भाषण को सुनने का था। पहली ही मुलाकात में सेवियर दम्पति स्थायी रूप से परिवर्तित हो गए। रामकृष्ण के श्रद्धालुओं में शामिल होने के लिए १८९७ में वे भारत आए। कुछ ही वर्षों में सेवियर दम्पति ने अलमोड़ा के निकट एक यूरोपीय बागान मालिक की सम्पति खरीदी और वहां रामकृष्ण आन्दोलन से सम्बन्धित मायावती अद्वैत आश्रम की स्थापना की। लेकिन इससे पूर्व कि स्वामी विवेकानन्द अपने चरणों से इस आश्रम को पवित्र करते, कैप्टन

सेवियर ने सन् १९०० में वहीं पर अपनी अंतिम सांसें लीं और हिन्दू पद्धति से वहीं उनका अंतिम संस्कार भी किया गया। श्रीमती सेवियर ने श्री रामकृष्ण संघ की सेवा पूरी आत्मीयता से जारी रखी। रामकृष्ण आंदोलन में सेवियर दम्पति का उल्लेख सम्मान से किया जाता है और श्रीमती सेवियर को आदर से 'माता जी' कहा जाता है।

सवाल यह उठता है कि सेवियर दम्पति अम्बाला में स्वामी विवेकानन्द से मिलने से पूर्व शिमला क्यों आये थे? इस प्रकरण पर रामकृष्ण विवेकानन्द आंदोलन पर लिखने वाले पूर्व तथा पश्चिम के लेखक दुर्भाग्य से खामोश हैं। यह यात्रा ब्रिटिश शासन काल में ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला मात्र को देखने के लिए नहीं हो सकती। सेवियर दम्पति ब्रिटिश होते हुए भी ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ थे। १९ अगस्त, १८९७ को एक अन्य सन्त द्वारा स्वामी रामकृष्ण को लिखे एक पत्र से इस बात की पुष्टि होती है। मेरे विचार में सेवियर दम्पति सम्भवत: एक ऐसे स्थान की तलाश में शिमला आए थे, जहां रामकृष्ण केन्द्र स्थापित करने के लिए जमीन खरीदी जा सके। वास्तव में वे उन दिनों विभिन्न स्थानों पर केन्द्र के लिए उचित भूमि की तलाश कर रहे थे। जब वे वर्ष १८९६ में अल्पस में स्वामी विवेकानन्द के साथ रहे, उसी समय उन्होंने मन बना लिया था कि हिमालय में रामकृष्ण-विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए। लेकिन उस समय सेवियर दम्पति को हिमालय में यथोचित भूमि उपलब्ध नहीं हो सकी। फलस्वरूप कुछ वर्षों बाद उन्होंने अलमोड़ा केन्द्र की स्थापना की।

२० अगस्त, १८९७ को स्वामी विवेकानन्द अम्बाला से अमृतसर पहुंचे। अमृतसर रेलवे स्टेशन पर वहां के नागरिकों ने उनका अभिनन्दन किया। टोडरमल बार-एट-लॉ के घर पर स्वामी जी कुछ देर तक ठहरे। उसी दिन स्वामी जी ने तांगे पर धर्मशाला के लिए प्रस्थान किया।

अब प्रश्न यह उठता है कि स्वामी विवेकानन्द धर्मशाला क्यों आये? स्वामी विवेकानन्द जी की कुछ आत्म-कथाओं में यह दलील दी गई है कि स्वामी जी के धर्मशाला प्रवास का कारण सम्भवत: उनका निरन्तर गिरता स्वास्थ्य रहा होगा। स्वामी जी का धर्मशाला प्रवास समय रहते सुनियोजित ढंग से तैयार कर लिया गया था। यह तथ्य उनके १९.८.१८९७ को श्री रामकृष्णानन्द को अम्बाला से लिखे पत्र में स्पष्ट है। उन्होंने इस पत्र में विशेषतौर से अपने धर्मशाला प्रवास का उल्लेख किया था — "मैं पंजाब की पहाड़ियों (धर्मशाला) में कुछ दिन विश्राम करूँगा। तत्पश्चात् पंजाब में काम शुरू करूँगा।" उन्होंने आगे कहा, "यदि मैं कुछ दिनों के लिए पहाड़ों में ठहरूँ तो मुझे स्वास्थ्य लाभ होगा।"[१]

यह सुखद बात है कि हिमाचल के इस पहाड़ी स्थल धर्मशाला ने स्वामी जी को निराश नहीं किया। शांत व दर्शनीय धर्मशाला तथा धौलाधार पर्वत शृखला के भव्य सौंदर्य ने उन्हें ज्वर से मुक्त किया और आराम दिलाया। स्वामी जी ने अपने सन्त साथी स्वामी ब्रह्मानन्द को २ सितम्बर

को एक पत्र में लिखा कि धर्मशाला आकर उनके स्वास्थ्य में आशाजनक सुधार हुआ है और वे ज्वर तथा टॉसिल से पूरी तरह मुक्त हो चुके हैं।[२]

स्वामी जी धर्मशाला में कितने दिनों तक ठहरे इस बारे में एक स्पष्ट मत नहीं है। अगस्त, १९८८ के अपने अठाहरवें संस्करण में उद्‌बोधन कार्यालय कोलकत्ता से प्रकाशित "भारते विवेकानन्द" बंगला की पुस्तक के पृष्ठ-३९९ में लिखा है कि स्वामी जी २० अगस्त १८९७ के बाद १५ दिन तक धर्मशाला में ठहरे थे। किन्तु बंगला में लिखी गई आत्मकथा के दूसरे लेखक स्वामी गम्भीरानन्द उससे सहमत नहीं हैं। स्वामी गम्भीरानन्द द्वारा लिखित – "युग नायक विवेकानन्द भाग तृतीय" प्रकाशक उद्‌बोधन कार्यालय कोलकत्ता, चौदहवां संस्करण, पृष्ठ ३०१ के अनुसार स्वामी विवेकानन्द केवल ७-८ दिनों तक ही धर्मशाला में ठहरे। उसके बाद वे अमृतसर गये और वहां से ३१ अगस्त को रावलपिंडी चले गये। अत: स्वामी गम्भीरानन्द के अनुसार वे केवल २० से २७/२८ अगस्त तक धर्मशाला में ठहरे।

मुझे ऐसा लगता है कि यहां स्वामी गम्भीरानन्द सही नहीं है। उनके अनुसार स्वामी जी २७ या २८ अगस्त तक अमृतसर छोड़ गये होंगे। परन्तु उद्‌बोधन कार्यालय कोलकत्ता से प्रकाशित उनके पत्रों के संग्रह में उनका वह पत्र भी है जो उन्होंने अमृतसर से विशेष तौर पर २ सितम्बर को लिखा था। स्वामी ब्रह्मानन्द को बंगाली में लिखे इस पत्र के बारे में पहले संकेत किया जा चुका है।

धर्मशाला से वापिस आने पर यदि स्वामी जी बाद में अमृतसर में केवल दो दिनों तक ठहरे तो यह स्पष्ट है कि विवेकानन्द जी ने, जैसा "युग नायक विवेकानन्द" में वर्णित है, वह स्थान २७ तथा २८ अगस्त को नहीं छोड़ा, बल्कि ३१ अगस्त को छोड़ा है। अत: मेरा विनम्र विचार है कि स्वामी जी २० अगस्त से ३१ अगस्त तक मात्र १२ दिन धर्मशाला में ठहरे। यद्यपि ये सभी लेखक इस बात से सहमत हैं कि धर्मशाला में उनके साथ सेवियर दम्पति बराबर रहे।

अपने धर्मशाला प्रवास के दौरान विवेकानन्द कहां रहे, अधिकांश लेखक इस बारे में मौन हैं। यद्यपि अम्बाला, अमृतसर, मुर्रे या कश्मीर आदि अन्य स्थानों में उन्होंने विवेकानन्द जी के मेजबानों का उल्लेख अवश्य किया है। परन्तु स्वामी जी के पूर्व व पश्चिम के अनुयायियों द्वारा "स्वामी विवेकानन्द" नाम से अंग्रेजी में लिखी गई जीवनी में एक महत्वपूर्ण साक्ष्य दिया गया है। इस आधिकारिक पुस्तक की सूचना के अनुसार अपने धर्मशाला प्रवास में स्वामी विवेकानन्द लाहौर हाईकोर्ट के ख्याति प्राप्त वकील बख्शी सोहन लाल के घर ठहरे।[३]

धर्मशाला में उस ऐतिहासिक घर की पहचान करना अब मेरा लक्ष्य था जिसमें अगस्त, १८९७ में स्वामी विवेकानन्द ने निवास किया था। २० जुलाई, १९९१ को द ट्रिब्यून में प्रकाशित "हिमाचल प्रदेश में स्वामी विवेकानन्द" शीर्षक अपने लेख में मैंने पाठकों से भी इस बारे में सूचना

सम्बन्धी सहयोग मांगा था। इसके उत्तर में मुझे कई पाठकों ने लिखा। जालन्धर से वीरेन्द्र मोहन बख्शी ने मुझे लिखा कि धर्मशाला में स्वामी विवेकानन्द संभवत: उस घर में ठहरे थे, जिसे 'हरी-कोठी' नाम से जाना जाता है। यह कोठी कोतवाली बाजार के खजानची मुहल्ला में स्थित है। श्री वीरेन्द्र मोहन बख्शी ने स्वयं को बख्शी सोहन लाल का पौत्र बताया और लिखा है कि 'हरी-कोठी' के मालिक उसके दादा थे। यही 'हरी-कोठी' नामक घर बाद में बख्शी सोहन लाल ने कुटलैहड़ के राजा को बेच दिया था।

जिला कांगड़ा के पुराने राजस्व रिकार्ड के अन्तर्गत १८९५-९६ की जमाबंदी में सोहन लाल के पुत्रों सर्वश्री मोहन लाल, भगत राम, रामदास और तोता राम के नाम धर्मशाला का एक अन्य घर दर्शाया गया है, जो १९०५ के भूकम्प में ध्वस्त हो गया था। इससे शंका होती है कि क्या यही वह घर था जिसमें स्वामी विवेकानन्द ठहरे थे? लेकिन श्री.जी.एल. चोपड़ा द्वारा संपादित पुस्तक 'चीफस एण्ड फेमिलीज़ ऑफ नोट इन पंजाब', वाल्यूम–१, तीसरा संस्करण' में पृष्ठ १३५ पर बख्शी सोहन लाल की वंशावली प्रकाशित है। इसमें सर्वश्री मोहन लाल, भगत राम आदि के नाम बख्शी सोहन लाल के पुत्रों में शामिल नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि ध्वस्त हुये घर के मालिक कोई अन्य सोहन लाल थे और स्वामी विवेकानन्द उस घर में नहीं रहे थे। इन तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि लाहौर हाई कोर्ट के प्रसिद्ध वकील बख्शी सोहन लाल का घर यही 'हरी-कोठी' रहा होगा जो आज भी कोतवाली बाजार के खजानची मुहल्ला में स्थित है। इसी घर में स्वामी विवेकानन्द ने निवास किया था। यह घर उस समय वास्तव में एक प्रमुख घर था। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री मेहरचन्द महाजन ने आत्मकथा "लुकिंग बैक" में कई बार 'हरी-कोठी' का उल्लेख बख्शी सोहन लाल के घर के रूप में किया है। श्री महाजन इस सदी के प्रारम्भ में इस घर में अक्सर जाया करते थे। सन् १९२४-२५ के राजस्व अभिलेखों में भी दर्ज है कि लाहौर निवासी राय बहादुर सोहन लाल सुपुत्र श्री भानूमल, जाति महाजन, धर्मशाला में खेवट नं. ४१, खतौनी नं. ४०, खसरा नं. ५०४ में आवासीय सम्पति के मालिक रहे। यही आवास सन् १९२७ में कुटलैहड़ के राज परिवार को बेचा गया था जो अब भी 'हरी-कोठी' के नाम से जाना जाता है।

यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि धर्मशाला में अब भी यह घर यथोचित रूप से सुरक्षित है। इसी ऐतिहासिक घर में अगस्त, १८९७ के उत्तरार्द्ध में स्वामी विवेकानन्द ने विश्राम और स्वास्थ्य लाभ के लिए निवास किया था। उन्होंने पहाड़ के स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु का आनन्द लिया और धौलाधार पर्वत शृंखला ने उन्हें प्रभावित किया। कांगड़ा घाटी के शांत भू-दृश्यों ने उन्हें नि:सन्देह अगाध सुख प्रदान किया। निरन्तर शारीरिक थकान के कारण स्वामी जी गहरे दबाव से गुजर रहे थे। उन्हें सुरम्य प्राकृतिक शांत एकांत में विश्राम की नितान्त आवश्यकता थी और धर्मशाला प्रवास के

दौरान उन्हें आशातीत संतोष मिला।

धर्मशाला आने से पूर्व स्वामी जी ने अम्बाला से कोलकत्ता के संन्यासी बंधु स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखे एक पत्र में अपनी धर्मशाला यात्रा का उल्लेख किया था। २ सितम्बर, १८९७ को धर्मशाला प्रवास के बाद स्वामी जी ने एक अन्य संन्यासी बंधु स्वामी ब्रह्मानन्द को अमृतसर से भेजे गये पत्र में लिखा कि धर्मशाला निवास के बाद वह पूर्णतया स्वस्थ हो चुके हैं। ज्वर और टॉसिल्ज़ से पूरी तरह मुक्त हो गये हैं।

हिमाचल निवासियों के लिए यह बहुत गर्व की बात है कि स्वामी विवेकानन्द जैसी पवित्र आत्मा ने इस भूमि पर अपने चरण रखे और पहाड़ के नैसर्गिक जलवायु से उन्हें स्वास्थ्य लाभ हुआ। स्वामी जी के धर्मशाला आगमन की स्मृति को जीवन्त रखने के उद्देश्य से प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री शान्ता कुमार के निर्णय के अनुसार धर्मशाला में स्वामी जी की जो प्रतिमा स्थापित की जा रही है उससे भविष्य में भी लोगों को स्वामी जी के बताए आदर्श मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा मिलती रहेगी।

पूर्व मुख्य सचिव,
हिमाचल प्रदेश सरकार

सन्दर्भ

१. बंगाली में लिखी गई आत्मकथा—स्वामी विवेकानन्द, भाग २, पृष्ठ ६८६—८७ द्वितीय संस्करण, बंगाली वर्ष १८६३, प्रकाशक : उद्वोधन कार्यालय, कोलकत्ता।

२. स्वामी जी के पत्र, बंगाली संस्करण, प्रकाशक उद्वोधन कार्यालय, कोलकत्ता, चौथा संस्करण, पृष्ठ ५९२

३. जनवरी, १९८७ में अद्वैत आश्रम कोलकत्ता से प्रकाशित, उनके पूर्व व पश्चिम के अनुयायियों द्वारा लिखित पुस्तक “स्वामी विवेकानन्द जी की जीवनी” पृष्ठ संख्या २८३, बख्शी सोहन लाल के उत्तराधिकारियों की अब तक डलहौजी में पर्याप्त सम्पति है।

हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा धर्मशाला में प्रथम नवम्बर, १९९२ को स्वामी विवेकानन्द जी की प्रतिमा संस्थापित की गई। यह लेख उस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका से साभार गृहीत है।

शताब्दी समारोह समिति में अध्यक्षयीय उद्‍बोधन

भूपेन्द्र सिंह ठाकुर

२३ नवम्बर, २०१२ को बचत भवन शिमला के सभागार में स्वामी विवेकानन्द सार्ध शताब्दी समारोह, समिति, हिमाचल प्रदेश प्रान्त की उद्‍घोषणा हुई। इस अवसर पर प्रान्त समिति के अध्यक्ष, श्री भूपेन्द्र सिंह ठाकुर, सेवानिवृत्त उप-सेनापति (लैफ्टिनैंट जनरल) ने अपने प्रेरणास्पद उद्‍बोधन में इस प्रकार सम्बोधित किया —

आज हम स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं सालगिरह के वार्षिक महोत्सव मनाये जाने की योजना मनाने के उपलक्ष्य में एकत्रित हुए हैं। यह विचार विमर्श करने के लिए कि स्वामी जी की जीवनी, उनकी विचारधारा, उनकी उपलब्धियां किस प्रकार समाज के समक्ष प्रस्तुत करें जिससे समाज पुन: प्रेरित होकर उनके दर्शन एवं उनके बताये हुये पथ पर अग्रसर हो सके।

सर्वप्रथम मैं संयोजकों के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे आपने स्वामी जी की जीवनी और लेखनी को गहराई से अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। विशेषतया यह विश्लेषण करने के लिए कि उनकी विचारधारा आज के सामाजिक परिवेश में कितनी प्रासंगिक एवं उपयोगी है।

आज के इस भौतिकवादी, उपभोक्तावादी और स्वार्थी परिवेश में आर्थिक सम्पन्नता ही सफलता का मापदण्ड बन गया है। विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि पूरा विश्व एक वैश्विक गांव बन गया है। सूचना एवं भौतिक ज्ञान का विस्फोट मात्र एक बटन दबाने पर उपलब्ध हो जाता है। युवा पीढ़ी सतत मनोरंजन एवं विषय भोग को खोजती रहती है। तनाव बहुत बढ़ गया है। परिणामस्वरूप पूरे समाज परिवार और व्यक्ति में अशान्ति एक महामारी के रूप में फैल चुकी है और यह शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तीनों स्तर पर कैंसर की तरह फैल रही है। असहिष्णुता बहुत बढ़ गई है। जिससे व्यक्ति परिवार और समाज सब प्रभावित हो चुके हैं। इसके कारण समाज में अर्न्तजातीय पंथ और पृथक धर्म में तनाव, कहासुनी और लड़ाई झगड़े बढ़ गये हैं। इसका विकराल रूप हमारे सामने आतंकवाद के रूप में जन्म ले चुका है। इस परिवेश में स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा दर्शाया हुआ पथ ही हमारा मार्गदर्शन कर सकता है।

स्वामी जी की विचारधारा और दर्शन मूलत: भारतीय संस्कृति, जिसका आधार वैदिक धर्म है, पर आश्रित है। आज मैं इसी विचार को आपके सम्मुख रखना चाहूँगा।

किसी भी संस्कृति को समझने के लिए हमें यह देखना चाहिये कि मानव व समुदाय अपने आपको किस प्रकार निर्मित करता है, प्रकट करता है। उससे ही उसकी संस्कृति का बोध होता है। संस्कृति मानव की आत्मोन्नति का मापदण्ड भी है और अभिव्यक्ति का साधन भी।

भौतिक समृद्धि मात्र से संस्कृति का अनुमान नहीं कर सकते। हां, संस्कृति से भौतिक परिणाम भी अवश्य होता है पर उसका आधार जीवन मूल्यों में है, अन्य व्यक्ति और पदार्थों के साथ स्व को जोड़ने में है। संस्कृति का निर्माण व निर्वाह कैसे होता है, इसको भी समझ सकते हैं। भारतीय शास्त्रों के अनुसार इस प्रक्रिया के तीन अंग माने जाते हैं। दोषापनयन, हीनांगपूर्ति, अतिशायादान। इसकी सरल व्याख्या इस दृष्टांत से समझी जा सकती है, एक साधारण भूमि को उपजाऊ खेत के रूप में "संस्कारित" करना चाहें तो उस भूमि में से अनुपयोगी एवं विरुद्ध तत्वों को हटाना पड़ेगा। पत्थरों, झाड़ियों, घास-फूस आदि को साफ करना, हल जोतना आदि सब दोषापनयन की क्रियाएं हैं। जमीन में खाद देनी और सिंचाई करनी पड़ेगी। इससे "हीनांगपूर्ति" हो जाएगी। उचित समय आने पर तैयार खेत में बीज बोया जाएगा, यही "अतिशय आदान" है जिसमें एक नूतन बात लाई जाती है और उसको लेकर उपलब्ध मूल्यों की ओर प्रारम्भ किया जाता है।

इस दृष्टांत को मानव की चितभूमि में घटित कर देखें तो संस्कृति की प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है। ऋषियों ने स्वीकारा कि प्रत्येक मानव शिशु जब जन्म लेता है तो अन्य सभी पशुओं के जैसा ही होता है। यदि मानव संस्कृति में उसे दीक्षित-शिक्षित नहीं किया गया तो वह बड़ा होकर भी पशुवत् ही रहेगा। अत: पाश्वीय संस्कारों का निवारण ही मानव संस्कृतिकरण में दोषापनयन है। शरीर, प्राण, मन, संघात को जीवन आदर्श के साक्षात्कार योग्य सशक्त बनाना हीनांगपूर्ति होगा और पौरुषेय संस्कारों का अपादप नूतन दृष्टिकोण अतिशय आदान।

भारतवर्ष में उपर्युक्त तीन अंगों को क्रमश: अधर्म-वर्जन, धर्म अभ्यास, धर्मानुकूल अर्थ-काम के अर्जन व उपभोग के द्वारा अपनाया गया था। यह भारत के ऋषियों का जीवन दर्शन है जिसमें धर्म, मानव जीवन विज्ञान का महत्तम तत्व है और संस्कृति की आधारशिला है। भारतीय धर्म का आधार वेद है। इसलिए हमारा धर्म वैदिक धर्म है। स्वामी जी की सिंह वाणी इसी प्रामाणिकता को स्वीकार करती है। उनकी यह मान्यता थी कि समस्त भारत को एक सूत्र में बांधकर आज तक उज्जीवित व आरोह पथ पर अग्रसर रखने वाली मूल-भूत प्राण शक्ति वेदान्त ही है। वेदान्त के बारे में मेरी जो जानकारी है, वह अपने पूजनीय गुरुदेव स्वामी ईश्वरानन्द गिरी जी के आशीर्वाद से प्राप्त है। इनका आश्रम राजस्थान प्रान्त के सुप्रसिद्ध स्थल माऊँट आबू में है।

स्वामी विवेकानन्द यह मानते हैं कि भारतीय संस्कृति का प्रमुख प्राणात्मक तत्व भारतीय आत्मदर्शन है। वेदान्त जिसे अद्धैत के नाम से सम्बोधित करता है। श्रुति अनुभूति-अनुमान प्रबल प्रमाणों से वेदान्त यह उद्घोषित करता है कि सत्-चित्-आनन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति ही जीवन का एक मात्र तात्पर्य है। इससे कर्म और मोक्ष प्रौढ़ सिद्धान्तों का निर्माण हुआ। भारतीय धारणा है कि संसार में जो कुछ दु:ख-सुख घटित होता है वह संकल्प बल और पूर्व कर्म सामग्री 'प्रारब्ध' के

निमित और उपादान कारणों से ही होता है। परन्तु यह भी सत्य है कि ईश्वर केवल कर्म विधाता ही नहीं, मोक्षदाता अनुग्रह-शक्तिमान भी है तथा अपने पौरुषेय से प्राचीन कर्म को नूतन कर्म से काटा जा सकता है। त्याग-तितिक्षा से वर्तमान दु:ख-सुख को अध्यात्म उन्नति का साधन भी बनाया जा सकता है और ज्ञान से समस्त कर्म बन्धन को दग्ध भली किया जा सकता है। यही जीवन लक्ष्य है। इस प्रकार, मैं कौन हूँ? मुझे कैसे जीना चाहिये? मैं क्यों जी रहा हूँ? इन तीनों विषयों का समाधान वेदान्त प्रदान करता है। स्वामी विवेकानन्द वेदान्त को एक दर्शन मानते थे। किसी भी संस्कृति को उज्जीवित रखने के लिए चार बातों की पूर्ति होना आवश्यक है।

पहला : एक मुख्य परिपूर्ण उद्देश्य या तात्पर्य का होना।

दूसरा : एक उज्जवल इतिहास जिसका प्राचीन गौरव वर्तमान पीढ़ी को प्रेरणा, उत्साही और प्रौढ़ता से सम्पन्न करा सके।

तीसरा : संस्कृति के मूल्यों को सजीव प्रवृत्त कराने के लिये सामाजिक माध्यमों या संस्थानों की उपलब्धि।

चौथा : उस उज्जीवन या प्रवृति के लिए सामूहिक दृढ़ संकल्प।

इसमें भारत को पहला और दूसरा तो पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है। वर्तमान विज्ञान की क्रान्ति को लेकर भारतीय समाज में कई विक्षेप तो आये हैं पर अभी भी भारत में पिता—पुत्र पत्नी, भाई बहिन और सामाजिक सम्बन्धों के बारे में कह सकते हैं कि प्राचीन संस्कृति के अवलम्बन के कारण भारत में स्थिरता और घनिष्ठता अधिक है। थोड़ी सतर्कता और बुद्धिमता से इन सामाजिक संस्थानों को संस्कृति के प्रति विद्रोह करने या विमुख होने से बचाया जा सकता है।

हमारी मुख्य कमजोरी सामाजिक सामूहिक दृढ़ संकल्प है। हमारे जीवन—दर्शनानुसार मानव का विकास चार आश्रमों में पूर्ण होता है।

ब्रह्मचर्याश्रम का आधार गुरुकुल है।
गृहस्थाश्रम का आधार पितृकुल है।
वानप्रस्थ आश्रम का आधार देवकुल है।
संन्यास आश्रम का आधार आत्मकुल है।

भारत में इन परम्पराओं को गुरु, पितृ, देव रूपों से मूर्तिमान करके रखा है। भारतीय व्यक्ति इन्हीं तीनों को अपनाते हुए आत्मपद की पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

भारत के मानव शास्त्र ने मोक्ष या आत्मोन्नति को ही मानव का एक मात्र लक्ष्य माना है। इस अर्थ में भगवद्गीता में कहा गया है कि यज्ञ-दान-तप का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। यह मनुष्य को पाप से बचाने वाले और पवित्र करने वाले साधन हैं। यदि मानव विश्व विकास के विरुद्ध अपनी इच्छा पूर्ति चाहेगा तो उसकी यह मान्यता कैंसर की तरह एक भयंकर कल्मष होगी। इसलिए अपने चित् और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने की जो क्रिया है वही तप है। हमारी संस्कृति निष्कामना पर ही निहित है। धर्म विरुद्ध काम दैत्यता की जड़ है उसे उखाड़ना अनिवार्य है। लोभ एक दूसरी

भयंकर बाधा है जो मानव को सहजतया घेर लेती है। अर्थ संग्रह लोभ रूपी मादकता को उत्पन्न करता है। जिसके कारण व्यक्ति अपने कर्म और भाव जगत के संचालन में शक्तिहीन हो जाता है। अर्थ बढ़ता है तो उसका प्रयोग भी धर्म के अनुसार समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए। इसके लिए दान विहित है। यज्ञ भाव जगत की अदभुत शक्ति है। यज्ञ की अपूर्व शक्ति से मानव को अद्वैत आत्म संस्कार का अतिशय आदान मिलता है और वह जीवत्व को छोड़कर शिवत्व को प्राप्त होता है। सारे संसार में वैज्ञानिक क्रान्ति फैल रही है। प्रत्येक देश तीव्र आत्म शोधन करने के लिए बाधित हो रहा है। भारत भी इस परिस्थिति को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ सकता है। इसमें युवाओं का विशेष योगदान आवश्यक है। अज्ञान-अश्रद्धा संशय इन तीन महादोषों से युवाओं को मुक्त होना पड़ेगा।

आहार-विहार, वेश-भूषा, वचन-मनन आदि दैनिक व्यवहार में भारतीयता का प्रस्फुरण हो। गर्भादान से अन्तेष्टि तक के प्रधान सोलह संस्कारों में से जितने भी हो सकें, उन संस्कारों के बीजों के सिंचन, अंकुरण व वर्धन के लिए अपने-अपने गृह या परिवार में भारतीय सामाजिक रूपों का निर्माण करना होगा। इसके द्वारा ही हमारा राष्ट्र देव, पितृ, गुरु त्रय के विद्रोह रूपी भयंकर पाप से बच सकता है।

आधुनिक विज्ञान की विविध विधाओं को केवल भौतिक दृष्टि से नहीं अपितु अध्यात्म और धार्मिक मान्यताओं के साथ अपना होगा। हमारी संस्कृति ने हर चीज़ को देखने के लिए त्रिविध दृष्टि दी है, आधि भौतिक, आधि दैविक और आध्यात्मिक। तुम एक शरीर मात्र नहीं हो, तुम्हारे अन्दर प्राण और बुद्धि भी है और इन सब का साक्षी आत्मा भी है।

इनके अनुरूप हमें अपने शरीर प्राण एवं बुद्धि को विकसित करना है उसी में सत्, चित्, आनन्द प्रकट हो जायेगा। सत् हमारी क्रिया में, चित् हमारी भावनाओं में एवं आनन्द हमारे ध्यान में प्रकट होगा। तभी हम पूर्णत्व को प्राप्त होंगे।

अन्त में महाभारत में वन पर्व के एक प्रसंग की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। यक्ष के प्रश्न करने पर कि ***कः पन्थाः***? धर्मराज युधिष्ठिर ने उतर दिया था ***धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।*** धर्म का तत्त्व अत्यन्त गूढ़ है, अतः जिस मार्ग से महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है।

इसी आशा के साथ कि स्वामी विवेकानन्द जैसे महा-जन नायक के द्वारा दर्शाये गये पथ के अनुसरण से समाज में जागरूकता लाने के हमारे सामूहिक प्रयत्न सफल और फलदायक हो, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति!!!

स्वामी जी का शिकागो व्याख्यान

११ सितम्बर, १८९३

११ सितम्बर, १८९३ को विश्व धर्म महासभा शिकागो में स्वामी विवेकानन्द जी ने जब अपना व्याख्यान अमेरिकावासी बहनो और भाइयों के सम्बोधन से आरम्भ किया तो सभागार में उपस्थित हजारों श्रोताओं की करतल ध्वनि बहुत देर तक गूंजती रही। सभागार में लोग हर्षोल्लास से उठ खड़े हुए। यह चमत्कार भारत में युगों-युगो से चले आ रहे ऋषि परम्परा के संस्कारों का प्रभाव था। स्वामी जी के व्याख्यान में विश्व समाज के लिए श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों से सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति का संदेश अभिव्यक्त है। राष्ट्रीय जनमानस की इस व्याख्यान के बारे में जानने की तीव्र जिज्ञासा रहती है। स्वामी जी का मूल व्याख्यान अंग्रेजी में है। यह युगान्तरकारी पूरा व्याख्यान यहां यथावत् मूल रूप से पहले अंग्रेजी में और तदुपरान्त हिन्दी में प्रस्तुत है। स्वामी जी ने कहा —

Sisters and Brothers of America,

It fills my heart with joy unspeakable to rise in response to the warm and cordial welcome which you have given us. I thank you in the name of the most ancient order of monks in the word; I thank you in the name of the mother of religions and I thank you in the name of millions and millions of Hindu people of all classes and sects.

My thanks, also, to some of the speakers on this platform who, referring to the delegates from the orient, have told you that these men from far-off nations may well claim the honour of bearing to different lands the idea of toleration. I am proud to belong to a religion witch has taught the world both tolerance and universal acceptance. We believe not only in universal toleration, but we accept all religions as true. I am proud to belong to a nation which has sheltered the persecuted and the refugees of all religions and all nations of the earth. I am proud to tell you that we have gathered in our bosom the purest remnant of the Israelites, who came to Southern India and took refuge with us in the very year in which their holy temple was shattered to pieces by Roman tyranny. I am proud to belong to the religion which has sheltered and is still fostering the remnant of the grand Zoroastrian nation. I will quote to you, brethren, a few lines from a hymn which I remember to have repeated from my earliest boyhood, which is every day repeated by millions of human beings:

Rucheeman vaichitryaadrijukutilanaanaapathajusham!
Nrinaameko Gamyastvamasi payasaamarnava ib!!

"As the different streams having their sources in different places all mingle their

water in the sea, so, O Lord, the different paths which men take through different tendencies, various though they appear, crooked or straight, all lead to thee."

The present convention, which is one of the most August assemblies ever held, is in itself a vindication, a declaration to the world of the wonderful doctrine preached in the Gita:

Ye Yathaa maam prapadyante Taanstathaiva Bhajaamyaham!
Mama vastmaamuvarante Manushyaah paartha sarvashah!!

"Whosoever comes to Me, through whatsoever form, I reach him, all men are struggling through paths which in the end lead to me."

Sectarianism, bigotry, and its horrible descendant, fanaticism, have long possessed this beautiful earth. They have filled the earth with violence, drenched it often and often with human blood, destroyed civilisation and sent whole nations to despair. Had it not been for these horrible demons, human society would be far more advanced than it is now. But their time is come, and I fervently hope that the bell that tolled this morning in honour of this convention may be the death-knell of all fanaticism, of all persecutions with the sword or with the pen, and of all uncharitable feelings between persons wending their way to the same goal.[1]

मेरे अमेरिकावासी बहनों और भाइयो!

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार में सन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ और सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से धन्यवाद देता हूँ।

मैं इस मंच से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियों का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश के व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों (मतों) और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के

---

1. The complete works of Swami Vivekananda, vol. 1, P. 3-4

विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान ज़रथुष्ट्र (पारसी) जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियां सुनाता हूँ, जिसकी आवृति मैं अपने बचपन से करता रहा हूँ और जिसकी आवृति प्रतिदिन लाखों मनुष्य करते हैं।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।[1]

जैसे विभिन्न नदियां भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेड़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें आकर मिलते हैं।

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ सम्मेलनों में से एक है, स्वत: ही गीता के इस अद्‌भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।[2]

जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।

साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धिता सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं, यदि ये वीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धिता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु निनाद सिद्ध हो।[3]

---

१. *शिवमाहिम्नस्तोत्रम्।।७।।*
२. *गीता।।४/११।।*
३. *विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड पृ. ३-४*